I.S.S.N. 0971-902

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 11, अंक - 2 अप्रैल - 99

Vol.-11, Issue-2 April-99

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार के रथ का दृश्य

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

मुखपृष्ठ चित्र परिचय

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की कृषि व्यवस्था, समाज व्यवस्था, राज्य व्यवस्था एवं पर्यावरण संरक्षण विषयक शिक्षाओं के जन-जन में प्रचार एवं जैन धर्म की प्राचीनता के प्रचार-प्रसार हेतु **परम पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के अन्तर्गत गठित **भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार समिति** ने ऐतिहासिक लाल किला मैदान से 22 मार्च 1998 को श्रीविहार का शुभारम्भ कराया है। भारत के प्रधानमंत्री **माननीय श्री अटल बिहारी बाजपेयीजी** ने 9 अप्रैल 1998 को अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त जैसे सार्वभौम सिद्धान्तों एवं राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रचार के उद्देश्य से देश भ्रमण हेतु इसका प्रवर्तन किया है।

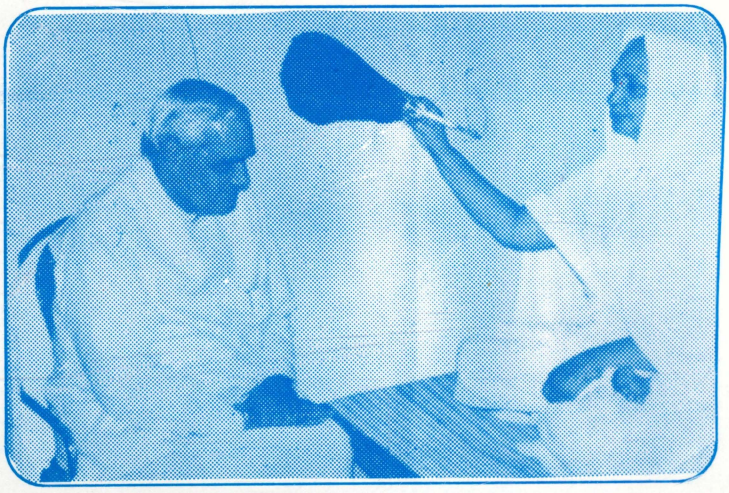

प्रवर्तन के अवसर पर प्रधानमंत्री पूज्य माताजी से चर्चारित

इस रथ के प्रवर्तन के समय अपने शुभाशीष में पूज्य माताजी ने कहा कि 'युग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने जब तपश्चर्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया तब इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने दिव्य समवसरण सभा की रचना कर दी। भगवान ने दिव्य धर्मामृत का उपदेश दिया। जब भगवान के समवसरण का श्रीविहार हुआ, उस समय कुबेर ने सबको मुँहमांगा धन बांटा एवं रत्नों की मोटी-मोटी धारा बरसाई। तब मनुष्यों ने तो क्या, पशुओं ने भी बैरभाव को त्याग कर परस्पर मैत्री भाव को धारण किया। जैसे तीनों लोकों में सबसे ऊँचा सुमेरू पर्वत है वैसे ही तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ समवसरण है और सब धर्मों में सर्वश्रेष्ठ अहिंसामयी धर्म है। भगवान का यह श्रीविहार सारे जगत के लिये, सब शासकों के लिये, सारी जनता के लिये मंगलमयी हो, यही मेरी भावना है एवं यही मेरा सभी के लिये मंगल आशीर्वाद है।'

दिल्ली, हरियाणा एवं राजस्थान में जैन धर्म की प्राचीनता, प्रासंगिकता, जैन जीवन पद्धति की उपादेयता का जन-जन में उद्घोष करने के उपरान्त यह रथ 5 अप्रैल 1999 को नीमच नगर से मध्यप्रदेश में प्रवेश कर चुका है। इसके माध्यम से जैन संस्कृति की महती प्रभावना हो रही है।

I.S.S.N. - 0971 - 9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 11, अंक 2 — अप्रैल - 1999
Volume 11, Issue 2 — April - 1999

मानद् - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 001

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452 001 (M.P.)

☎ (0731) 464074 (O) 787790 (R), Fax : 0731 - 787790

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.) भारत

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)
Email : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करने से पूर्व सम्पादक / प्रकाशक की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्पादक मंडल / Editorial Board

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं
प्राचार्य - शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
554, सराफा,
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics &
Principal - Govt. Post Graduate College,
Upstairs Diksha Jewellers.
554, Sarafa,
Jabalpur - 482 002

प्रो. कैलाश चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
प्रा. - भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम वि. वि., उज्जैन,
मोहन निवास, देवास रोड़,
उज्जैन - 456 006

Prof. Kailash Chandra Jain
Retd. Prof. & Head,
A.I.H.C. & Arch. Dept.,
Vikram University, Ujjain,
Mohan Niwas, Dewas Road,
Ujjain - 456 006

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
आर - 20, रसबहार कालोनी,
लहरगिर्द,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Ganita Bharati,
R - 20, Rasbahar Colony,
Lehargird,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
प्राध्यापक - भौतिकी,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन,
बी - 220, विवेकानन्द कालोनी,
उज्जैन - 456 010

Prof. Parasmal Agrawal
Prof. of Physics,
Vikram University, Ujjain,
B - 220, Vivekanand Colony,
Ujjain - 456 010

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 (जापान)

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 (Japan)

डॉ. स्नेहरानी जैन
पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान,
'छवि', नेहानगर,
मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)

Dr. Snehrani Jain
Retd. Reader in Pharmacy,
'Chhavi', Nehanagar,
Makronia,
Sagar (M.P.)

सम्पादक / Editor

डॉ. अनुपम जैन
सहायक प्राध्यापक - गणित,
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009

Dr. Anupam Jain
Asst. Prof. - Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College
'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar,
Indore - 452 009

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत *INDIVIDUAL*	संस्थागत *INSTITUTIONAL*	विदेश *FOREIGN*
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 100=00	रु./Rs. 200=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 400.00/ U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।

सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय ही प्रेषित करें।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5
☐ अनुपम जैन

लेख / ARTICLE

जैन समाज में नारी की हैसियत 9
☐ आचार्य गोपीलाल 'अमर'

बौद्ध एवं मौर्यकाल में पत्नी उत्पीड़न 19
☐ जयश्री सुनील भट्ट

जैन नीति पर आधारित राजनीति व अर्थशास्त्र के प्रणेता - आचार्य चाणक्य 25
☐ सूरजमल बोबरा

जैन आगम साहित्य में अर्थ चिन्तन 33
☐ गणेश कावडिया

प्राचीन पंजाब का जैन पुरातत्व 37
☐ पुरुषोत्तम जैन एवं रवीन्द्र जैन

झांसी के संग्रहालय में संग्रहीत जैन प्रतिमायें 45
☐ सुरेन्द्रकुमार चौरसिया

तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) और उनकी साधना स्थली - विशाला (बद्रीनाथ) 45
☐ गुलाबचन्द जैन

बलात धर्म परिवर्तन के स्मारक - सराक 59
☐ रामजीत जैन, एडवोकेट

टिप्पणी / NOTE

नमिनाथ जैन मन्दिर कड़ौदकला 63
☐ नरेशकुमार पाठक

Omniscience & Jainism 64
☐ A. P. Jain

Are All Tribals Hindu/Jain 65
☐ A. P. Jain

भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली 67
☐ आदित्य जैन

पुस्तक समीक्षा / Book Review

हिन्दी साहित्य की संत परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन द्वारा डॉ. बारेलाल जैन 71
☐ कांतिकुमार जैन

लेख समीक्षा / Essay Review

कर्मबन्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा डॉ. जे. डी. जैन 75
☐ रमेश चन्द जैन

पत्र में लेख
सराक सर्वेक्षण – कतिपय तथ्य 77
□ ब्र. अतुल
इन्दौर की देन – महात्मा गांधी लेन 79
□ रामजीत जैन
मत – अभिमत 81
गतिविधियाँ 83

अगले अंकों में

रसायन के क्षेत्र में जैनाचार्यों का योगदान	□ नन्दलाल जैन, रींवा
अन्य ग्रहों पर जीवन की आधुनिक शोध	□ हेमन्त कुमार जैन, जयपुर
जैन भूगोल : वैज्ञानिक सन्दर्भ	□ लालचन्द जैन 'राकेश', गंजबासोदा
काल द्रव्य : जैन दर्शन और विज्ञान	□ अनेकान्त जैन, लाडनूँ
गोम्मटसार का नामकरण	□ दिपक जाधव, बड़वानी
जैन कर्म सिद्धान्त की जीव वैज्ञानिक परिकल्पना	□ अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़
क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धान्त	□ अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद
नवकार महामंत्र, साधना के स्वर	□ जयचन्द्र शर्मा, बीकानेर
Colour : The Wonderful Charecterstics of Sound	□ Muni Nandi Ghosh, Ahmedabad
What Dreams Talks About	□ A. P. Jain, Gwalior
Jaina Paintings In Tamilnadu	□ T. Ganesan, Thanjavur
The Early Kadambakas and Jainism in Karnataka	□ A. Sundra, Sholapur
शक तथा सातवाहन सम्बन्ध	□ नेमचन्द डोणगाँवकर, देउलगाँवराजा
अनेकान्त की दृष्टि और पर्यावरण की सृष्टि	□ उदयचन्द जैन, उदयपुर
जैन साहित्य और पर्यावरण	□ जिनेन्द्र कुमार जैन, सागर
जैन धर्म और पर्यावरण	□ मालती जैन, मैनपुरी
प्रकृति पर्यावरण के संदर्भ में आहार का स्वरूप	□ राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

*अर्हत् वचन प्रकाशन श्रृंखला का 42 वाँ पुष्प आपको समर्पित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है। जहाँ इस अंक में हमने गत **'सराक एवं जैन इतिहास'** अंक की कुछ शेष सामग्री प्रकाशित की वहीं इस अंक में समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र विषयक सामग्री भी देने का प्रयास किया है। हमारे पाठकों एवं सम्मानित लेखकों का दीर्घ काल से आग्रह था कि सामाजिक विज्ञान के विषयों को भी अर्हत् वचन में सम्मिलित किया जाये। उनके इसी परामर्श का सम्मान करते हुए इस अंक में आचार्य गोपीलाल 'अमर', डॉ. जयश्री सुनील भट्ट एवं डॉ. गणेश कावड़िया के आलेख प्रकाशित किये हैं। महान राजनीतिज्ञ एवं नीतिकार आचार्य चाणक्य पर लिखा श्री सूरजमल बोबरा का आलेख भी नये क्षितिज को स्पर्श कर रहा है। हमें विश्वास है कि हमारा पाठक वर्ग इन आलेखों को रुचिकर एवं ज्ञानवर्द्धक पायेगा। जैन इतिहास एवं पुरातत्व पर तो सामग्री दी ही है किन्तु गत अंक में की गई घोषणा के बाद भी स्थानाभाव के कारण हम प्रो. ए. सुन्दरा, डॉ. टी. गणेशन एवं श्री नेमचन्द डोणगांवकर के आलेख इस अंक में नहीं दे पा रहे हैं, हम उन्हें आगामी अंकों में अवश्य प्रकाशित करेंगे। अगला अंक **11(3)** हम प्राथमिकताओं के अनुरूप पुनः जैन विज्ञान को समर्पित कर रहे हैं। इसकी एक झलक हमारे पाठकों को पृष्ठ 4 पर अगले अंकों में प्रकाश्य आलेखों की सूची से मिल सकती है। निश्चयेन हमारे पास विज्ञान विषयक अन्य भी कई आलेख प्रकाशनाधीन हैं जिन्हें शीघ्र ही प्रकाशित करने हेतु हम प्रयत्नशील हैं। संसाधनों की सीमायें सदैव रहती हैं किन्तु यदि हमारे माननीय लेखकगण एवं विज्ञ पाठकगण सदस्यता वृद्धि में भी हमें सहयोग करें तो काम आसान हो सकता है। जनवरी-मार्च 99 के मध्य चलाये गये सदस्यता अभियान के उत्साहवर्द्धक परिणाम आये हैं और हम इसे निरन्तर जारी रखने हेतु संकल्पबद्ध हैं।*

इन पृष्ठों पर हम सदैव से महत्वपूर्ण सामाजिक विषयों पर चर्चा करते रहे हैं, विशेषतः उन विषयों पर जिनमें समाज के अकादमिक अभिरूचि सम्पन्न व्यक्तियों का योगदान हो सकता है। विगत कुछ वर्षों से मैं देख रहा हूँ कि देश में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की बाढ़ सी आ गई है। जहाँ एक दशक पूर्व मात्र गिनी-चुनी जैन समाज की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें थीं, वहीं अब उनकी संख्या इतनी हो गई है एवं उनमें इतनी तेजी से विस्तार हो रहा है कि शायद ही जैन समाज का कोई सक्रिय कार्यकर्ता हो जिसे इन सबका नाम मालूम हो। फिलहाल मुझको इन सबकी सूची भी देखने को नहीं मिली। स्थापित होने वाली प्रत्येक संस्था का कोई न कोई उद्देश्य होता है और उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उस संस्था के पदाधिकारियों द्वारा किये जा रहे प्रयासों से धर्म और समाज को लाभ भी होता है, किन्तु कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो संगठित समाज के लिये आवश्यक नहीं अपितु अनिवार्य भी होते हैं एवं इनके न होने से समाज को अपूरणीय क्षति उठानी पड़ती है, भले ही उसका अहसास हमें तत्काल न हो। इन कार्यों को कोई व्यक्ति नहीं कर सकता, इसके लिये संस्था का ही सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि यह सतत् चलने वाले कार्य होते हैं एवं

इनमें व्यापक निवेश की तो जरूरत होती है, परिणाम भी विलम्ब से प्राप्त होते हैं। मैं यहाँ ऐसे ही कुछ कार्यों को सूचीबद्ध कर रहा हूँ, हमारे पाठकगण ही इनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता के बारे में निर्णय करेंगे। मैं दिगम्बर जैन समाज को केन्द्र बिन्दु बनाकर ही इन बिन्दुओं की चर्चा कर रहा हूँ, क्योंकि इस समाज के बारे में अपेक्षाकृत अधिक जानकारी है।

1. देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने वाली हमारी समाज ने क्या हमारे तीर्थ क्षेत्रों एवं वहाँ विराजमान जिन बिम्बों की कोई अद्यतन सूची तैयार की है?

शायद नहीं। लगभग 25 वर्ष पूर्व प्रकाशित भारत के दि. जैन तीर्थ के 5 खण्ड इस आवश्यकता की आंशिक पूर्ति ही करते हैं क्योंकि जहाँ उसमें संग्रहीत साम्रगी काफी पुरानी पड़ चुकी है, वहीं वे विराजमान जिन बिम्बों के बारे में कोई यथेष्ट जानकारी नहीं दे पाते। एक मानक प्रारूप के अन्तर्गत भारत के दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, कल्याणक क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, कला क्षेत्र आदि के बारे में पूरी जानकारी एकत्रित की जानी चाहिये। यत्र-तत्र विकसित हो रहे नवोदित तीर्थों के बारे में भी समीचीन जानकारी समाहित करते हुए भारत के दि. जैन तीर्थ पुस्तक श्रृंखला के नये सचित्र, प्रामाणिक मानक संस्करण निकालने की प्रक्रिया अविलम्ब प्रारम्भ की जानी चाहिये एवं प्रत्येक 10-15 वर्ष के अन्तराल से इसके नये संशोधित संस्करण निकालने की व्यवस्था होनी चाहिये।

2. क्या भारत के समस्त दिगम्बर जैन मन्दिरों/चैत्यालयों की कोई सूची है?

नहीं। 'दिगम्बरत्व का वैभव' शीर्षक से दिगम्बर जैन महासमिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक (1985) में इस दिशा में प्रयास किया गया। दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर एवं अ. भा. दि. जैन महिला संगठन, इन्दौर द्वारा भी इस दिशा में प्रयास किये गये, किन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति, संकल्पशीलता के अभाव एवं कार्य की व्यापकता, जटिलता के कारण ये संस्थायें इस अति महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण न कर सकीं। वस्तुत: आज संस्थायें कार्य को उसके महत्व एवं आवश्यकता के आधार पर नहीं, अपितु उसके परिणामों के प्राप्ति की समयावधि, संस्था को होने वाले तात्कालिक लाभ आदि को दृष्टि में रखकर परियोजनाओं को हस्तगत करती हैं। यह उचित नहीं है। तथापि मैं इस ओर दृष्टिपात करने वाली इन तीन संस्थाओं के प्रबन्धकों को साधुवाद देता हुआ उनसे यह अनुरोध करता हूँ कि वे इन परियोजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर कर इन्हें यथाशीघ्र पूर्ण करें। इन तीनों संस्थाओं का इस हेतु परस्पर सहयोग, संकलित सूचनाओं एवं अनुभवों का आदान-प्रदान कार्य को सुगम बना सकता है। यथाशीघ्र तैयार की गई सूची के प्रकाशन के उपरान्त इस सूची के परिशिष्ट प्रत्येक 3 से 5 वर्ष में निकालने की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

3. भारत एवं विदेश के उन नगरों तथा ग्रामों, जहाँ दि. जैन बन्धु निवास करते हैं, की सूची क्या हमारे पास है?

नहीं। जब हम जैन बन्धुओं के निवास स्थलों की ही जानकारी नहीं रखते तो फिर उन नगरों की समाज, समाज बन्धुओं के पत्राचार/दूरभाष सम्पर्क सूत्र, समाज के व्यक्तियों की जनगणना एवं प्रतिभाओं की बात ही छोड़ दीजियेगा। इसके अभाव में किसी भी सभा, समिति, परिषद या सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधि संगठन कैसे माना जा सकता है? वह समाज के सभी बन्धुओं तक अपनी बात, अपनी आवाज कैसे पहुँचा सकता है? अपनी प्रतिभाओं/निधियों की कैसे सुरक्षा करेगा, कैसे मदद करेगा? सूचना क्रांति के वर्तमान युग में सूचनाओं की

इतनी दरिद्रता अनेक प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। यह मेरा सुनिश्चित मत है कि देश का जो संगठन इस काम को जितने अधिक अंशों में पूर्ण कर लेगा वही सच्चा सामाजिक संगठन बन जायेगा। शेष सभी मात्र कागजी।

देव तथा देव उपासकों के बाद आइये जरा शास्त्र की चर्चा करें।

4. जैन धर्म/दर्शन/समाज/संस्कृति से सम्बद्ध किन-किन ग्रन्थों का अबतक प्रकाशन हो चुका है एवं कौन-कौन से ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित कहाँ-कहाँ पड़े हैं? इसकी जानकारी क्या हमारे किसी विद्वत् संगठन को है?

शायद नहीं। अपनी इस धरोहर को कौन सम्हालेगा। विभिन्न विद्वत् एवं सामाजिक संगठनों से जुड़ा होने के नाते अपने किसी संगठन की आलोचना का अधिकार तो मुझे नहीं है किन्तु सुझाव की दृष्टि से इसका उल्लेख किया है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर ने सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना प्रारम्भ की है। योजना के अन्तर्गत प्रारम्भिक तैयारी के अन्तर्गत -

(क). जैन विद्या के अध्येताओं की स्थानवार सूची।

(ख). जैन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक एवं प्रकाशकों की विस्तृत सूची तैयार की जा चुकी है। अगले चरण में जैन प्रकाशकों, पुस्तक विक्रेताओं, ग्रन्थ भंडारों की सूचियाँ तैयार की जायेंगी। समानान्तर रूप में देश के प्रमुख जैन पुस्तकालयों की परिग्रहण पंजियों का भी कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है जिससे किसी भी प्रकाशित जैन धर्म सम्बन्धी पुस्तक का विवरण तथा उसकी देश के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्धता के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त हो सके। हम चाहते हैं कि विद्वानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो जिससे योजना सफलतापूर्वक शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण हो।

5. क्या शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकों में जैनधर्म विषयक भ्रांतिपूर्ण जानकारी के परिष्कार की कोई योजना किसी संगठन ने बनाई है?

विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाली विभिन्न स्तर की पाठ्यपुस्तकों में जैन धर्म विषयक अनेक भ्रांतिपूर्ण जानकारियाँ दी जाती हैं और आश्चर्य है हमारे देश में कार्यरत जैन समाज के अनेक संगठन इस बात की चर्चा तो करते हैं कि पाठ्यपुस्तकों में भ्रांतिपूर्ण जानकारी दी गई है किन्तु उसके परिष्कार के लिये योजनाबद्ध प्रयास नहीं करते।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ने कतिपय पाठ्यपुस्तकों में निहित विसंगतिपूर्ण अंशों को संकलित कर उनके परिष्कार हेतु प्रयास किये हैं। अब तक प्राप्त त्रुटिपूर्ण अंशों को एक पुस्तिका के रूप में संकलित कर प्रकाशित किया जा रहा है। किन्तु ये प्रयास अभी नाकाफी हैं। विभिन्न प्रान्तों से विभिन्न भाषाओं में सैकड़ों की तादाद में गलत जानकारी देने वाली पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। ऐसी सभी पुस्तकों का संकलन, त्रुटियों का रेखांकन एवं परिष्कृत सामग्री उपलब्ध कराना एक व्यापक एवं जटिल कार्य है। अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्री परिषद, विद्वत् परिषद तथा जैन विद्या के प्रेमी सभी बन्धु जब तक इस हेतु सजग नहीं होंगे, तब तक यह काम पूर्ण नहीं हो सकता।

ये तो कुछ बिन्दु हैं। ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर हमें प्राथमिकता के आधार पर सोचना होगा। मात्र तात्कालिक लाभ, कार्य की सरलता और सहजता की दृष्टि से नहीं, अपितु

अपनी संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यकता और उपयोगिता के आधार पर हमें कार्यक्रमों का चयन करना है। अपने पूर्वजों की दूरदृष्टि और समर्पण की भावना से ही हमें आज अपनी महान सांस्कृतिक धरोहर प्राप्त हुई है। किन्तु वर्तमान में वैसी उत्कंठा देखने को नहीं मिल रही है। सामाजिक संगठनों एवं विद्वत् समुदाय के संगठनों से अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण करते समय उपरोक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखने का अनुरोध है। धन तो श्रेष्ठी उपलब्ध करायेंगे किन्तु कार्य विद्वानों को ही करना है।

मैं अपने सुविज्ञ पाठकों की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा करूंगा क्योंकि उन्होंने सदैव अपनी सक्रियता का परिचय दिया है। अर्हत् वचन के प्रस्तुत अंक के सम्पादन एवं प्रकाशन की प्रक्रिया में सहयोग हेतु मैं दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के समस्त ट्रस्टियों, विशेषत: श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (अध्यक्ष), संपादक मंडल के सभी सदस्यों, होल्कर विज्ञान महाविद्यालय के गणित विभाग के सभी साथियों, विशेषत: विभागाध्यक्ष प्रो. प्रहलाद तिवारी एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय के सभी सहयोगियों विशेषत: श्री अरविन्दकुमार जैन (प्रबन्धक) के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिन सबके समग्र सहयोग का प्रतिफल है प्रस्तुत अंक।

अन्त में मैं इस अंक के सम्मानित लेखकों के प्रति भी आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके श्रम से ही इस अंक का सृजन हुआ है।

30.4.99 **डॉ. अनुपम जैन**

अर्हत् वचन के सम्बन्ध में तथ्य सम्बन्धी घोषणा

(फार्म - 4, नियम - 8)

प्रकाशन स्थल	:	इन्दौर
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक एवं प्रकाशक	:	देवकुमारसिंह कासलीवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	580, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
मानद् सम्पादक	:	डॉ. अनुपम जैन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
स्वामित्व	:	कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (अन्तर्गत - दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट) 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001
मुद्रण व्यवस्था	:	सुगन ग्राफिक्स, इन्दौर

मैं देवकुमारसिंह कासलीवाल एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

30.3.99 **देवकुमारसिंह कासलीवाल**

अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 9 - 18

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन समाज में नारी की हैसियत*

■ आचार्य गोपीलाल अमर **

नर - नारी पर एक नजर

प्रकृति का, कुदरत का, एक हिस्सा मानव - जाति भी है। उसमें नर की प्रकृति नारी की प्रकृति से अलग है। यह अलगाव भी प्राकृतिक है, इसलिये सब जगह है और सदा रहेगा। नर और नारी का यह अलगाव, वास्तव में, एक जुड़ाव है, नर - नारी के जोड़ से ही मानव - जाति का सिलसिला कायम है। यह सिलसिला भी प्रकृति की देन है।

जैन धर्म प्रकृति प्रधान तो है ही, प्रकृति का दूसरा नाम भी है। प्रकृति की स्थापना या प्रवर्तन किसी ने कहीं किया, इसलिये जैन धर्म की स्थापना या प्रवर्तन भी किसी ने नहीं किया, इसीलिये नर और नारी में अलगाव - जुड़ाव की स्थापना या प्रवर्तन भी किसी ने नहीं किया। जैन सिद्धान्त की बुनियाद, व्यवहार की इमारत, साहित्य की सजावट और इतिहास की इबारत प्रकृति की जमीन पर बनती - बिगड़ती है।

जैन समाज में नारी का विकास

जैन समाज भारतीय समाज में इतना घुला - मिला है कि उसे अलग करके देख पाना मुश्किल है। पुत्री, बहिन, ननद, भानजी, भतीजी, पोती, धेवती, दुल्हिन, वधू, पतोहू, पत्नी, भाभी, जेठानी, देवरानी, माता, ताई, चाची, बुआ, मौसी, मामी, सास, दादी, नानी आदि नाते - रिश्ते और कन्या, कुमारी, सधवा, सपत्नी, रखैल, विधवा, दासी, दाई आदि विशेषण जैन समाज में नारी की वही हैसियत सूचित करते हैं जो जैनेतर समाज में है। संस्कार, दस्तूर, फैशन आदि भी अक्सर एक - जैसे हैं, कानूनी और संवैधानिक स्थिति भी प्राय: एक - जैसी ही है। इसलिये 'जैन समाज' के साथ 'जैन' विशेषण इस कारण से नहीं, बल्कि अन्य कारणों से लग सकता है, जबकि पुरुष या नारी के साथ लगे 'जैन' विशेषण का मतलब हो जायेगा जैन धर्म का अनुयायी पुरुष या नारी।

फिर भी, जैन आचार - व्यवहार में नारी की वैधानिक स्थिति, या कानूनी हैसियत, अच्छी अधिक और बुरी कम रही है, क्योंकि अपने परिवेश में प्रचलित सभी अच्छी परम्पराओं, प्रवृत्तियों आदि को मुक्त हृदय से अपनाने को जैन नर - नारियों को छूट रही और हानिकारक या सदोष परंपराओं (मूढ़ताओं) आदि से बचने की हिदायतें दी जाती रहीं।

यही कारण है कि **'मनुस्मृति'**, **'मिताक्षरा'** आदि की तरह का कोई धर्मशास्त्र (शरीअत या रिलजियस लॉ) लिखना जैनाचार्यों ने गैरजरूरी समझा। उन्होंने जैन धर्म और संस्कृति की व्याख्या में, या समाज व्यवस्था और लौकिक विकास पर बहुत लिखा, बारीकी से लिखा। लेकिन धर्मशास्त्र पर लिखने की बारी आई तो वे महज एक जुमला कह कर आगे बढ़ गये, 'वे सभी लौकिक विधान जैनों के लिये प्रमाण (मंजूर) हैं, जिनसे सम्यक्त्वव की हानि न हो और व्रतों में दोष न लगे।'

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधि:।
यत्र सम्यक्त्व - हानिर् - न यत्र न व्रत - दूषणम्॥[1]

---

* 12.10.1996 को एम.डी. जैन कॉलिज, आगरा के प्रांगण में पठित लेख का कुछ परिवर्धित रूप।

* शोध अधिकारी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली। निवास - 'अमरावती', सी - 2 / 57, भजनपुरा, दिल्ली - 110053।

यह जुमला आज का नहीं, कल का नहीं, यह है लगभग 935 ईस्वी का, जिसे आचार्य सोमदेव सूरि ने बतौर एक फ़तवे के कलमबन्द किया। ऐसा फ़राख - ओ - फ़ैयाज फतवा, ऐसी सम्प्रदाय - निरपेक्ष व्यवस्था, ऐसी मुक्त - कंठ घोषणा, शायद ही कभी किसी और धर्मशास्त्री ने की हो।

जैन अध्यात्म में नारी का विकास

दूसरी ओर, मोक्ष - मार्ग का पालन करने - कराने में जैनाचार्य वज्र से भी कठोर थे, जैसा कि गुणस्थानों (आत्म - शुद्धि के चौदह सोपानों) और गृहस्थों तथा साधुओं की घेराबंद आचार - संहिता से प्रमाणित होता है। इसका एक उदाहरण है नारी के विकास का आध्यात्मिक सिद्धान्त। अध्यात्म की आखिरी मंजिल, यानी मुक्ति, के लिये जो मानसिकता, दृढ़ता और शारीरिक कठोरता चाहिये, वह नर में प्रकृति से है (द स्ट्रांगर सेक्स), इसलिये नर की मुक्ति पर जैन धर्म में कोई मतभेद नहीं हुआ। नारी - मन भावुक है और नारी - तन नाजुक है (द वीकर सेक्स), इसलिये वह मानसिक दृढ़ता और शारीरिक कठोरता नारी में अपेक्षाकृत कम है, इसलिये एक वर्ग ने नारी की प्रकृति को मुक्ति के लिये अपर्याप्त या गैर - मुआफिक माना और कहा कि किसी अगले जन्म में नर के रूप में उत्पन्न होकर वही नारी मुक्त हो सकती है। पन्द्रहवीं - सोलहवीं शती में लुप्त हो चुके यापनीय संघ नामक प्रमुख जैन सम्प्रदाय ने नारी - स्वातंत्र्य पर विशेष बल दिया।

दरअसल जैन सिद्धान्त इस सन्दर्भ में बहुत ही स्पष्ट और शाश्वत है। आध्यात्मिक विकास की शर्त, जैन धर्म के अनुसार, तपस्या है, जिसका मतलब है तमाम तरह की हसरतों का कतई खात्मा, यानी इच्छाओं की समाप्ति। इस दृष्टि से नारी की भूमिका कितनी बुनियादी है, कितना सार्थक है, इसकी झलक मिलती है समाज - संगठन के जैन सूत्र से।

चतुर्विध संघ में नारी की महत्ता

'जैन समाज' के लिये शास्त्रीय शब्द है 'चतुर्विध संघ' — (1) साधु, यानि सांसारिक संबंधों से पूरी तरह दूर हुए तपस्वी पुरुष, (2) साध्वियाँ या आर्यिकायें, यानी सांसारिक संबंधों से पूरी तरह दूर हुई तपस्वी नारियाँ, (3) श्रावक, यानी सांसारिक संबंधों से दूर होने का अभ्यास करते गृहस्थ पुरुष और (4) श्राविकायें, यानी सांसारिक संबंधों से दूर होने का अभ्यास करती गृहस्थ नारियाँ।

सामाजिक संगठन के इस सूत्र में कई सिद्धान्त छिपे हैं, व्यावहारिकता और तर्जे अमल दिखते हैं, वैज्ञानिक न्याय - निष्ठा चमकती है, संस्कृत के 'अर्धांगिनी', वामांगना' और अंग्रेजी 'बेटर हाफ', 'दि फेयर सेक्स' आदि मुहावरों की सार्थकता झलकती है।

इस सूत्र के मुताबिक पुरुष - वर्ग और नारी - वर्ग का हिस्सा बराबर का होना चाहिये, लेकिन आध्यात्मिक विकास की होड़ में नारी - वर्ग हमेशा आगे रहा, खासा आगे रहा। शास्त्रों के अध्ययन - अध्यापन करने और तीर्थंकर का उपदेश प्रत्यक्ष रूप से सुनने का उन्हे न केवल अधिकार रहा है, बल्कि प्रत्येक तीर्थंकर के समवसरण में नारियों के लिये बारह में से पाँच प्रकोष्ठों का प्रावधान होता है।

समवसरणों में उनकी उपस्थिति के आँकड़े भी पुरुषों से बहुत अधिक हैं, प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के समवसरण में साधु चौरासी हजार थे, जबकि साध्वियाँ तीन लाख पचास हजार थीं, यानी साधुओं से तीन सौ सत्रह प्रतिशत अधिक, श्रावक तीन लाख

थे जबकि श्राविकायें पाँच लाख थीं, यानी श्रावकों से सढ़सठ प्रतिशत अधिक। अंतिम तीर्थंकर महावीर के समवसरण में साधु चौदह हजार थे, जबकि साध्वियाँ छत्तीस हजार थीं, यानी साधुओं से एक सौ सत्तावन प्रतिशत अधिक, श्रावक एक लाख थे, जबकि श्राविकायें तीन लाख थीं, यानी श्रावकों से दो सौ प्रतिशत अधिक। चौबीस तीर्थंकरों के समवसरणों में संयुक्त रूप से साध्वियाँ साधुओं से अठत्तर प्रतिशत अधिक और श्राविकायें श्रावकों से एक सौ प्रतिशत अधिक थीं।

तीर्थंकरों के गर्भाधान से मोक्ष तक पाँचों कल्याणक - महोत्सवों में नारियों का योगदान उल्लेखनीय होता है। तीर्थंकर की माता किसी - न - किसी जन्म में अवश्य ही मुक्त होती है। ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि जैन धर्म में नारी की हैसियत कितनी ऊँची है। आज साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की संख्या अधिक है और धार्मिक आचार - विचार में श्रावकों की अपेक्षा श्राविकायें अधिक आगे रहती हैं।

जैन नारियों में शिक्षा

समवसरण और चतुर्विध संघ में साध्वियों और श्राविकाओं की इतनी बड़ी संख्या उनका प्रबल धार्मिक उत्साह सूचित करती हैं। धार्मिक उत्साह स्वाध्याय से ही आ सकता है। स्वाध्याय के लिये शिक्षा आवश्यक है। उन असंख्य साध्वियों और श्राविकाओं की शिक्षा औपचारिक या स्कूली चाहे न रही हो, लेकिन उनके शिक्षित रहे होने में संदेह नहीं किया जा सकता।

औपचारिक शिक्षा भी उन दिनों रही होनी चाहिये, क्योंकि, तब बहुत पहले, तीर्थंकर ऋषभनाथ अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को लिपि विद्या और अंकगणित सिखाने के साथ औपचारिक शिक्षा की परंपरा स्थापित कर चुके थे। उस परंपरा के टूटने के संकेत नहीं मिलते, इससे प्रमाणित होता है कि वह अंतिम तीर्थंकर महावीर के समय तक चली। भारतीय इतिहास के सभी कालों में, जीवन के सभी क्षेत्रों में चमकती - दमकती जैन नारियाँ सिद्ध करती हैं कि तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात् भी जैन समाज ने नारी - शिक्षा पर यथोचित ध्यान दिया।

'Seven Great Religions'[2]में एनी बीसेंट ने जैन नारियों की शिक्षा के बारे में लिखा है कि 'वे नारियों की शिक्षा पर बहुत ज्यादा जोर देते हैं और जैन साध्वियों का एक बहुत बड़ा काम है शिक्षा देना और यह देखना कि उस शिक्षा पर अमल हो। यह एक ऐसी बात है, जिस पर, मेरे विचार से, हिन्दू लोग जैन लोगों से प्रेरणा ले सकते हैं, ताकि हिन्दू नारियाँ भी इस प्रकार शिक्षित की जा सकें कि उनकी पारंपरिक आस्था न डिगे और वे अपने उस धर्म के प्रति उदासीन न हो जायें जिसका उपदेश उनके अपने ऋषियों द्वारा दिया गया है।

वर्तमान जैन समाज की शीर्ष संस्थाओं में महिला - शाखाओं, महिला - प्रकोष्ठों आदि का प्रावधान है। स्वतंत्र अ. भा. महिला संगठन भी हैं। विभिन्न स्तरों पर जैन महिला सम्मेलन भी समय - समय पर होते रहते हैं। अनेकानेक जैन महिलाएँ स्वतंत्रता संग्राम में आगे रहीं, अधिकांश क्षेत्रों में उच्च पदों पर आसीन हैं, लेखन, संपादन, व्यवसाय आदि द्वारा देश - विदेश में प्रसिद्ध हैं। विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में हो रहे शोध - सर्वेक्षण आदि पर अलबत्ता जैन समाज का ध्यान कम गया है। जैन नारियों के पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि पक्षों पर लगभग आठ शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं, जिनकी नामावली

इस लेख के अंत में प्रस्तुत की गई है।

जैन नारियों द्वारा लेखन - कार्य

नारियों द्वारा रचित शास्त्रों, काव्यों आदि की संख्या नगण्य दिखती है, जिसका कारण यह है कि नारियों ने जो रचनायें कीं, वे उनके अपने नाम से नहीं, बल्कि उनके गुरुओं के नाम से प्रचारित हुईं। यह बात नारियों के ही नहीं, गृहस्थ पुरुषों के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है। और, यह बात कहीं लिखी - कही नहीं मिले, फिर भी है ऐसी ही, वरना क्या कारण है कि लगभग तमाम प्राचीन जैन साहित्य के लेखक पुरुष साधु ही हुए, नारियाँ या गृहस्थ पुरुष नहीं के बराबर हुए।

वर्तमान स्थिति को प्राचीन स्थिति का मापदंड़ मानें तो कहना पड़ेगा कि आज की तरह प्राचीन काल में भी अधिकांश लेखन नारियों और पुरुष गृहस्थों द्वारा होता था, अलबत्ता आज की तरह तब भी कुछ पुरुष साधु भी लेखक - चिंतक रहे होंगे।

इसका भी कारण यह है कि प्राचीन काल में, विशेष रूप से जैन समाज में, साधुओं का प्रभाव इतना अधिक था कि गृहस्थ श्रावक अपना सब कुछ उनके नाम पर कर देने में अपने को धन्य मानता था। वह जो लिखता उसे अपने गुरु साधु को सौंप देता, जिसे उसी रूप में या संशोधित - परिवर्धित करके वे अपने नाम से प्रचारित कर - करा देते थे।

यह प्रवृत्ति आठवीं शताब्दी ईस्वी के बाद, भट्टारक - प्रथा, यति - प्रथा और गुरु - प्रथा (यापनीय) के प्रभावशाली होने पर और भी पुरजोर होती गई। इसीलिये, पंडित आशाधर आदि कुछ गृहस्थों को छोड़कर किसी गृहस्थ के नाम से शास्त्र तो क्या, कोई काव्य तक लिखा हुआ नहीं मिलता। उल्लेखनीय है कि शास्त्रों की रचना और लेखन के लिये, और फिर पाण्डुलिपि के रूप में उनकी सुरक्षा के लिये, किसी पेड़ की छाया नहीं, बल्कि मजबूत छत चाहिये, जो गृहस्थ लोगों के पास ही होती थी, साधुओं के पास छत या झोपड़ी तो नहीं ही होती थी, वे उसका उपयोग भी बहुत कम करते थे।

जैन नारी की वैवाहिक स्थिति

जैन नारी की वैधानिक स्थिति अपने परिवेश की तुलना में अच्छी अधिक और बुरी कम रही है, यह तथ्य जैन नारी की वैवाहिक स्थिति के सन्दर्भ में और भी सटीक है।

जैन संस्कृति में आठ प्रकार के विवाहों का विधान चाहे नहीं किया गया, परन्तु उनका प्रचलन रहा है। प्राचीन जैन समाज में दहेज प्रथा का यो तो चलन ही नहीं था, या साहित्य में उसके उल्लेख होने से रह गये हैं। आजकल इस प्रथा में जैन समाज अग्रणी है। बहु - पत्नी प्रथा जैन समाज में भी, अन्य समाजों की तरह खूब रही, किन्तु किसी पत्नी के साथ बदसलूकी का उदाहरण नहीं मिलता।

स्वयंवर के सन्दर्भ में आचार्य जिनसेन ने 783 ईस्वी में जो घोषणा[3] की उसमें सिद्धान्त और व्यवहार एक - दूसरे के रूबरू होते हैं, चिंतन की वैज्ञानिकता है, मानवता के कीर्तिमान हैं, नारी का यथार्थवादी मूल्यांकन है - 'स्वयंवर रचाकर कन्या अपनी रूचि का वर चुनती है, स्वयं चुने गये पुरुष के कुलीन या अकुलीन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिये स्वयंवर के मामले में समझदार भाई या अपने - पराये किसी भी व्यक्ति का गुस्से में आ जाना ठीक नहीं। कोई व्यक्ति खासा कुलीन होने पर भी अभागा हो

सकता है और कोई अकुलीन होने पर भी सौभाग्यशाली हो सकता है। कुल और सौभाग्य के साथ - साथ रहने का कोई नियम नहीं है।'

स्वयंवर – गता कन्या वृणीते रुचिरं वरम्,
कुलीनमकुलीनं वा न क्रमोस्ति स्वयंवरे।
अक्षान्तिस् – तत्र नो युक्ता पितुर् – भ्रातुर् – निजस्य वा,
स्वयंवर – गतिज्ञस्य परस्येह न कस्यिचित्।
कश्चिन् – महाकुलीनोपि दुर्भग: शभगोपर:,
कुल – सौभाग्ययोर् नेह प्रतिबन्धोस्ति कश्चन।

जैन नारी की दशा – दुर्दशा

धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक समारोह, तरह - तरह की यात्राएँ, गोया कि जीवन के हर सुख - दु:ख में पुरुष के साथ नारी का यथोचित चित्रण जैन साहित्य की यह विशेषता है, जो उसे जैन सिद्धान्त से मिली है और जिससे सिद्ध होता है कि **'एक नहीं, दो – दो मात्रा में नर से बढ़कर नारी।'**

इस चित्रण के उत्साह में जैन साहित्यकार इतने आगे बढ़ कि उन्होंने रीति - रिवाज के दायरे नकार दिये, जात - पाँत की आयातित जकड़ ढीली कर दी। बचपन में पिता के, यौवन में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती नारी **(न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति)** को आजीवन पराधीन घोषित करने का विधान तो क्या, प्रसंग भी जैन साहित्य में अदृश्य है।

नारी को शूद्रों या पशुओं की कोटि में रखने के उदाहरण अदृश्य हैं। सती - प्रथा का प्रचलन जैन समाज में शायद ही कहीं रहा हो। देव - दासी प्रथा जैन धर्म में अदृश्य है, क्योंकि वहाँ उपास्य देव वीतराग होता है, जिसे दास - दासियों की आवश्यकता नहीं है।

दासी - प्रथा अवश्य प्रचलित थी, इसलिये जैनाचार्यों ने दास - दासियों की संख्या सीमित रखने के विधान किये। नारियों पर अत्याचार और ज्यादतियों के उदाहरण जैन साहित्य में भी मिलते हैं।[4] परन्तु इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रथम शताब्दी ईस्वी में साध्वाचार पर लिखित अपने ग्रन्थ 'भगवती आराधना'[4] में आचार्य शिवकोटि ने शिथिलाचार के लिये पुरुष को अपेक्षाकृत अधिक दोषी ठहराया है, क्योंकि वह नारी की अपेक्षा अधिक सबल होता है। उन्होंने शुद्धाचार के लिये नारी को अपेक्षाकृत अधिक प्रशंसनीय ठहराया है, क्योंकि वह तीर्थंकर, गणधर, वसुदेव, बलभद्र आदि की जननी होती है। 'सूय - गड़ंग'[5] में व्यवस्था दी गई है कि शील भंग के मामले में पुरुष नारी के बराबर दोषी तो हर हालत में माना जाये। छठी शती ईस्वी में संघदास गणी ने 'वसुदेव - हिण्डी' की अगडदत्त कथा में नारियों की निष्ठा और पवित्रता पर उठाये गये प्रश्नों के सकारात्मक समाधान अत्यन्त मार्मिक उदाहरणों के साथ दिये हैं।

जैन साहित्य में भी कई स्थानों पर नारी की ही नहीं बल्कि नारी - जाति की भी भर्त्सना की गई है। उसे पुरुष की प्रगति के मार्ग में बाधक बताया गया है। इसके कई कारण हैं — (1) तत्कालीन पर्यावरण, जिसका प्रभाव जैन समाज पर भी पड़ना व्याभाविक था, (2) स्त्री के प्रति पुरुष की खोटी नीयत और लंपटता को नियंत्रित करने का एक तरीका, (3) स्वदार - सन्तोष नामक अणुव्रत और ब्रह्मचर्य नामक महाव्रत का स्थितिकरण,

(4) वे नारियाँ, जो संख्या में कम होने पर भी, नारी जगत को कलंकित करती रही हैं एवं (5) आदमी की वह प्रवृत्ति जिसके तहत वह अपना दोष दूसरों पर मढ़ता है, खास कर कमजोरों पर।

दलित -पतित नारियों के उत्थान के उदाहरण

नारियों की पतित या दलित अवस्था के अत्यन्त मार्मिक चित्रण जैन साहित्य में भी हैं, लेकिन उनसे भी अधिक चित्रण ऐसी नारियों के हैं जो अथक प्रयत्न कौशल से जाग्रत हुईं, उत्थान के शिखर पर स्वयं आसीन हुईं —

अपवित्र: पवित्रो वा सुस्थितो दु:स्थितोपि वा,
धयायेत् पंच - नमस्कारं सर्व -पापै: प्रमुच्यतो। [6]

आचार्य जिनसेन द्वरा 783 ईस्वी में लिखित हरिवंश-पुराण[7] में उल्लेख है कि नारायण कृष्ण के पिता वसुदेव ने म्लेच्छ कन्या जरा से विवाह किया, जिससे उत्पन्न जरत् कुमार ने मुनि बनकर सद्गति प्राप्त की। इसी पुराण[8] में लिखा है कि राजा मधु ने राजा वीरसेन की पत्नी चन्द्रभा को पटरानी बना लिया और समय आने पर दोनों क्रमश: मुनि और आर्यिका बनकर स्वर्ग सिधारे।

'मृच्छकयिक' या 'मिट्टी की गाड़ी' की प्रसिद्ध कथा की नायिका वेश्यापुत्री वसन्तसेना ने अपने प्रेमी चारुदत्त के साथ श्राविका के व्रत धारण किये, जैसा कि उपर्युक्त 'हरिवंश पुराण'[9] में लिखा है। इसी पुराण[10] में और 'बृहत् कथाकोश'[11] में उल्लेख है कि धीवर जाति की एक कन्या, पूतिगन्धा ने क्षुल्लिका के व्रत लिये, राजगृह में सिद्धशीला की वन्दना की और समाधि-मरण करके सोलहवें स्वर्ग के अच्युतेन्द्र की देवी हुई।

'बृहत् कथाकोश'[12] के अनुसार यमपाश नामक चांडाल पर प्रसन्न होकर एक राजा ने उसकी पूजा की और उससे राजकुमारी का विवाह कर दिया। इसी ग्रन्थ[13] के अनुसार जैनाचार्य कार्तिकेय अपनी माता के पिता के पुत्र थे फिर भी मुनि पद के धारक थे।

मथुरा में खुदाई से प्राप्त स्तूप, मूर्तियों और आयाग - पटों का निर्माण (तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय से) वेश्याओं और उसके परिवार के सदस्यों तक ने कराया था, जैसा कि उन पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात है।

नारियों द्वारा स्थापित कीर्तिमान

प्रकृति ने तो नारी को नर के समकक्ष बनाया ही, उपर्युक्त घोषणा या फतवा ने उसे किन्हीं मानों में नर से ऊपर स्थापित कर दिया। पुराण, इतिहास और पुरातत्व में ऐसे अनेकों उदाहरण है जिनसे सिद्ध होता है कि जैन समाज और राजनीति में नारी को यथोचित, कभी - कभी यथोचित से भी ऊपर स्थान दिया गया या नारी ने अपने प्रयत्न से यथोचित स्थान प्राप्त किया।

कदाचित इसीलिये राम - कथा का, जिस पर जैन साहित्यकारों ने बीसियों काव्य लिखे, वह प्रसंग उल्लेखनीय है जिसमें मन्दोदरी ने रावण को राह पर लाने की कोशिश की। इससे भी अधिक उल्लेखनीय है वह प्रसंग जिसमें वन में छोड़ी जाते समय गर्भवती सीता ने राम से अपने संदेश में कहा — 'आपने लोकापवाद के कारण जिस तरह मुझे छोड़ा है, उसी तरह कभी अपना धर्म नहीं छोड़ बैठना।' जैसा कि सातवीं शती ईस्वी

के महाकवि रविषेणाचार्य ने पद्म - पुराण' [14] में लिखा है -

साम्राज्यादपि पद्माभ, तदेव बहु मन्यते,
नश्यत्येव पुना दर्शनं स्थिर - सौख्यदम्।
तदभव्य - जुगुप्सातो भीतेन पुरुषोत्तम,
न कथंचित त्वया त्याज्यं नितान्तं तद् - धि दुर्लभम्॥

पवन - सुत हनुमान की माता अंजना, पति श्रीपाल को कुष्ठ से मुक्त करने वाली मैनासुन्दरी, बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की दुल्हिन राजुलमती आदि नारी के 'अबला' विशेषण को झुठला कर दिखाती हैं कि नारी 'सबला' कैसे हो सकती है।

तीर्थंकर महावीर की शिष्या बनकर सती चन्दना ने सिद्ध कर दिया कि पहाड़ काटकर आगे बढ़ती गंगा की भांति नारी के सामने सांसारिक बाधाएँ बेमानी हैं। चन्दना की एक बहिन मृगावती की पारिवारिक और राजनीतिक सूझ - बूझ अद्भुत थी। श्रेणिक - चेलना, चण्डप्रद्योत - शिवादेवी, उदायन - प्रभावती आदि दंपतियों के चरित्रों में श्रंगार, वीर और शांत रसों के परिपक्व उदाहरण मिलते हैं।

कुछ ऐतिहासिक नारियाँ

जैन लेखकों ने नारी की भर्त्सना भले ही की हो, नारी का पक्ष भी खूब लिया। धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी का पति के साथ एक ही आसन पर आसीन होना अनिवार्य बताया गया। सामाजिक समारोहों में पति से बतरस लेती पत्नी के शब्दचित्र जैन साहित्य में भरपूर हैं। पति के साथ सांसारिक सुख के सरोवर में गोते लगाती सुकुमार सुन्दरियाँ जैन साहित्य में वर्णित हैं और कला में उत्कीर्ण हैं, राजकाज के संचालन और प्रजा के पालन में पति का हाथ बंटाती नारियों की संख्या भी बहुत है। शत्रु के समने चकनाचूर करने को पति के कठोर करों में खड्ग पकड़ाती चंडी नारियाँ जैन संस्कृति की धड़कन हैं।

लक्ष्मी, सरस्वती, अंबिका, पद्मावती आदि देवियों ने जैन कला और स्थापत्य और साहित्य में अपना स्वतंत्र विकास किया, जिससे उनकी मूर्तियाँ बनी और उपासना होनी शुरू हुई। देवियों के इस स्वतंत्र विकास से नारी - जाति के विकास में गति आई होगी।

कुछ अद्भुत - अपूर्व नारियों के नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। छठी शती ईस्वी पूर्व में मगध - सम्राट बिम्बिसार श्रेणिक की साम्राज्ञी चेलना, दूसरी शती ईस्वी पूर्व में मथुरा के राजा पूतिमुख की पत्नी उर्विला, बारहवीं शती में होयसल - नरेश विष्णुवर्धन की रानी शान्तला आदि ने अपने - अपने पतियों को जैन धर्म में लाने या बनाये रखने का कष्टपूर्ण संघर्ष किया।

प्रथम शती ईस्वी पूर्व में शकारि विक्रमादित्य के समकालीन कालिकाचार्य की साध्वी बहिन सरस्वती का अपने शील की रक्षा के लिये किया गया संघर्ष समाज के बाहर राजनीति में जा पहुँचा था। गुप्त सम्राट कुमारगुप्त के समय (432 ईस्वी) कोट्टिय - गण की विद्याधरी शाखा के दत्तिलाचार्य की गृहस्थ - शिष्या शामाढ्या ने मथुरा में एक जिन - प्रतिमा की स्थापना कराई थी। छठी शताब्दी और उसके बाद निर्मित कांस्य - मूर्तियों के बड़ोदरा के निकट अकोटा से प्राप्त समूह में जो अत्यन्त प्रसिद्ध जीवंत स्वामी की मूर्ति है उसकी निर्मात्री चन्द्रकुलोत्पन्न नागेश्वरी देवी थी। दसवीं शताब्दी में कल्याणी के उत्तरकालीन चालुक्यों के महादण्डनायक नागदेव की पत्नी, अत्तिमब्बे, पतिभक्ति और वीरता के लिये विख्यात थी, 'दान - चिंता - मणि'

थी और 'शांति-पुराण' आदि शास्त्रों की सहस्रों प्रतियाँ हाथ से लिखा-लिखाकर वितरित करने के लिये सदा याद की जाती रहेंगी।

विभिन्न दृष्टियों से उल्लेखनीय कुछ महत्वपूर्ण नारियाँ थीं - ग्यारहवीं शती में वनवासी के कदंब शासक कीर्तिदेव की पत्नी माललदेवी, होय्सल शासक बल्लाल द्वितीय के मंत्रीश्वर चन्दमौलि की पत्नी आचलदेवी, गंगवाड़ी के महामण्डलेश्वर वर्म्मदेव की पत्नी बाचलदेवी, त्रैलोक्यमल्लवीर सान्तरदेव की रानी चागलदेवी, अरूमुलिदेव यानी रक्कस गंग की पत्नी चट्टलदेवी, राजेन्द्र चोल कांगल्व की पत्नी सेठानी पद्मावती, आचार्य हेमचन्द्र की भक्त और जयसिंह सिद्धराज की जननी मीनलदेवी और पुत्री कांचनदेवी, कुमारपाल चालुक्य की रानी मोपलादेवी, चौदहवीं शताब्दी के चन्द्रवाड़-नरेश रामचन्द्र चौहान के मंत्री की पुत्रवधू और साहु वासाधर की पत्नी उदयश्री, तौलव नरेश की श्रुतोद्धारक राजकुमारी देवमती, मेवाड़ के इतिहास में प्रसिद्ध पन्ना धाय और बालक राणा उदयसिंह की शरणदाता और दुर्गपाल आशासिंह की माता, कार्कल नरेश वीर भैररस की बहिन काललदेवी, उन्नीसवीं शती के मैसूर-नरेश चामराज की पत्नी रंभा आदि, आदि।

ब्रह्मचर्य - पालन में नारी का निश्चय

ब्रह्मचर्य रक्षा में दृढ़ता या अडिगता पुरुष में अधिक है या नारी में, इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी हो, पर इतना तो कहना पड़ेगा कि ब्रह्मचर्य-पालन में नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक अडिग हो सकती है, क्योंकि -

1. धार्मिक आस्था, संकल्प-शक्ति और सहनशीलता के, और किसी हद तक हठ-योग के, जो तत्व आम तौर पर एक नारी में होते हैं, वे तत्व ही उसे ब्रह्मचर्य-पालन में पुरुष की अपेक्षा अधिक अडिग रखते हैं।
2. काम-वासना की प्रबलता, काम-तृप्ति की कमी, काम-सेवन की अधिकता, काम-तृप्ति में पुरुष की ज्यादती, बलात्कार आदि कारणों से काम-वासना के प्रति वितृष्णा या नफरत (रिपल्सन) हो सकती है, जिससे नारी का रुझान, बल्कि आग्रह, ब्रह्मचर्य के प्रति हो सकता है।
3. साथी पुरुष की किसी कारण से शक्तिहीनता पर नारी में निराशा भी हो सकती है और सहानुभूति भी हो सकती है, दोनों स्थितियों से नारी में ब्रह्मचर्य के प्रति आग्रह बढ़ सकता है।
4. सामान्य व्यवहार, मनोविज्ञान,जीव-रसायन विज्ञान (बायो केमिस्ट्री) आदि से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

ब्रह्मचर्य-पालन में नारी को पुरुष की अपेक्षा अधिक अडिग मानकर भारतीय शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य की रक्षा के प्रति नारी को कम और पुरुष को अधिक सचेत करना उचित समझा, पुरुष को अनुचित या असीमित काम-सेवन से बचाये रखने को शास्त्रकारों ने कई उपाय किये —

1. वैराग्य की महत्ता और सांसारिक सुखों की सारहीनता के तरह-तरह के उदाहरण देकर विचारोत्तजक वर्णन किये।
2. ब्रह्मचर्य के लाभ बताकर उसके पालन में पुरुष को अडिग रखने के लिये कठोर नियम बनाये।
3. ब्रह्मचर्य का आजीवन पालन असंभव होने की स्थिति में सामयिक (कैजुअल) पालन का

विधान किया।

4. ब्रह्मचर्य का सम्पूर्ण पालन असंभव होने की स्थिति में स्व-दार-संतोष, एक-पत्नी व्रत (स्त्री के सन्दर्भ में पातिव्रत्य) आदि की व्यवस्था की।
5. नारी से पुरुष को विरक्त रखने के लिये नारी को नाकारा, विनाशकारी, नागिन आदि के रूप में पुरजोर शब्दों में चित्रित किया।
6. नारी के प्रति पुरुष के सहज आकर्षण को विकर्षण में बदलने के लिये कई लोकोक्तियाँ प्रचलित कीं, जैसे –

   'जर जोरू जमीन, झगड़े की जड़ तीन' (लोकोक्ति),
   'ढोल गँवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' (गोस्वामी तुलसीदास),
   'संसार में विष – बेल नारी, तजि गये जोगीसरा' (कविवर द्यानतराय) आदि।

7. शारीरिक सौन्दर्य में पुरुष या स्त्री की असीमित आसक्ति और लंपटता को नियंत्रित करने के लिये शरीर की सारहीनता, मलिनता, क्षणभंगुरता आदि के वैराग्य-वर्धक चित्र खींचे, जैसे –

   'अस्थि – चर्म – मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति,
   ऐसी हो श्री राम में, होय न तो भवभीति' (रत्नावली-चरित)

   'दिपै चाम – चादर – मढ़ी, हाड – पींजरा देह,
   भीतर या सम जगत में, और नहिं घिन गेह' (कविवर भूधरदास),

   'पल – रुधिर – राध – मल – थैली, कीकस – वसादितैं मैली,
   नव द्वार बहें घिनकारी, अस देह करै किम यारी' (कविवर दौलतराम)

   आदि।
8. ब्रह्मचर्य पालन में पुरुष को अपनी कमजोरी और नारी को अपनी दृढ़ता का अहसास कराने के लिये ऐसा साहित्य रचा, जिसमें स्त्री को अनुचित रूप से पाने की चेष्टा में पुरुष की चौतरफा बरबादी दिखाई गई है और नारी महिमा मंडित की गई है।
9. नारी में पुरुष की काम-वासना को समाप्त करके पूज्य-भाव जगाने के लिये नारी को लक्ष्मी, सरस्वती आदि के समान घोषित किया -

   'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता:' (लोकोक्ति)

   'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' (महाकवि प्रसाद)

   'स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
   नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
   सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
   प्राच्येव दिग् जनयति स्पुरदंशु-जालम्॥' (भक्तामर स्तोत्र) आदि।

मध्यकालीन साहित्यकार नारी के नख-शिख वर्णन में मगन हुए, मगर नारी के मनोविज्ञान और चरित्र-चित्रण में भी अचूक रहे। स्त्री के सहज सौंदर्य से वे इतने सरस हुए कि उन्होंने ऐसे स्त्रीलिंग शब्दों का खूब प्रयोग किया, जिनके पुल्लिंग (या नपुंसक लिंग) शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं जैसे -'देशन' के लिये 'देशना', 'मोक्ष' के लिये 'मुक्ति', 'जिन-वचन' के लिये 'जिन-वाणी'। 'सल्लेखन' शब्द व्रत का विशेषण होने से इसी रूप

में ठीक रहता, फिर भी वह लिखा गया स्त्रीलिंग में 'सल्लेखना'। 'मुक्ति' के साथ 'वधू' आदि शब्द जोड़कर तो जैन साहित्यकारों ने मानों अपना अन्तर्मन ही व्यक्त कर दिया।

नारी वर्ग के जागरण और उत्थान पर इधर बहुत काम हो रहा है। भारतीय संसद में नारी विशेषाधिकार विधेयक प्रस्तुत हो चुका है। 4 से 15 सितम्बर 1995 तक चीन की राजधानी बीजिंग में नारियों के संदर्भ में समता, विकास और शांति की उपलब्धि के लिए चतुर्थ विश्व महिला परिषद का अधिवेशन हुआ।

अग्रलिखित जैन विषयों पर पी.एच.डी. की उपाधियाँ दी जा चुकी हैं –

1. **जैन और बौद्ध आगमों में नारी,** लेखक कोमलचन्द्र जैन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1967।
2. **Women in Jain Literature & Art** (500 B.C. to 13000 A.D.), कमलेश कुमारी सक्सेना, आगरा विश्वविद्यालय, 1973।
3. **स्वयंभू एवं तुलसी के नारी पात्र : तुलनात्मक अध्ययन,** योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरूण', गुरुकुल काँगड़ी, 1973।
4. **जैन विदुषी तपस्विनियों का इतिहास,** हीराबाई बोरड़िया, इन्दौर, 1976।
5. **A Study of the Concept of Sex in Indian Thought & Jainism with Special Reference to the *Madana Parājaya Cario,*** लक्ष्मीश्वर प्रसाद सिंह, बिहार, 1982।
6. **जैन एवं बौद्ध दर्शनों में भिक्षुकी संघ की उत्पत्ति, विकास एवं स्थिति,** अरूण प्रताप सिंह, वाराणसी, 1983।
7. **जैन आगमों में नारी – जीवन,** श्रीमती कोमल जैन, इन्दौर, 1986 (प्रकाशन वर्ष)।
8. **The Picture of Women as dipicted in Nāya Dhamma Kahāo,** (एम.फिल.), श्रीमती नलिनी बी. जोशी. पुणे, 1988।

सन्दर्भ –

1. उपासकाध्ययन, 34 - 480
2. Annibicent, Seven Great Religions, Adyar Library, Madras, 1966
3. हरिवंश पुराण, आ. जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 31, 53 - 5
4. भगवती आराधना, आ. शिवकोटि, पृ. 987 - 96
5. सूय गडंग, इत्थि परिण्णा (1,4)
6. ज्ञानपीठ पूजांजलि, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृ. 26
7. हरिवंश पुराण, सर्ग 31, 6 - 7
8. वही, सर्ग 43, 159 - 215
9. वही, सर्ग 21
10. वही, सर्ग 60
11. वृहत् कथाकोष, कथा 72
12. वही, कथा 74
13. वही, कथा 136
14. पद्मपुराण, आचार्य रविषेण, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सर्ग 57, 121 - 122

प्राप्त – 9.12.96

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 19 - 24

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

बौद्ध एवं मौर्य काल में पत्नी उत्पीड़न

■ जयश्री सुनील भट्ट *

पूर्व वैदिक काल की समानता पर आधारित व्यवस्था उत्तरवैदिक के अन्त तक पूर्णत: परिवर्तित हो गई। पूर्व वैदिक व्यवस्था में जहां पर स्त्री एवं पुरुष के संबंध मित्रता पूर्ण थे वहीं पर उत्तरवैदिक में पुरुष अपनी पत्नी का गुरु बन गया तथा अन्तत: वह पत्नी का देवता बन गया। देवता बन जाने के कारण हिन्दू परिवार में पति को राजा के समान निरंकुश अधिकार प्राप्त हुए। उसकी इच्छा ही कानून था। पति की निरंकुश तथा शासक प्रवृत्ति के कारण पत्नी के शोषण का सिलसिला तेजी से जारी हो गया। जिस समाज में प्रभुत्वशाली पुरुषों का तंत्र स्त्रियों पर शासन करता है, वह अन्यायपूर्ण उत्पीड़नकारी समाज होता है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य को वस्तु में बदलकर उन्हें अमानुषिक बनाती है। वास्तव में जब पुरुष अपनी पत्नी का शोषण करता है या उसकी आत्म अभिपुष्टि में जानबूझकर बाधक बनता है, वह उत्पीड़न की स्थिति होती है। इसमें हिंसा स्वत: ही अन्तर्निहित होती है। उत्पीड़न का संबंध स्थापित होते ही हिंसा आरंभ हो चुकी होती है। एक बार हिंसा और उत्पीड़न की स्थिति बन जाने पर वह उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क दोनों के लिए जीवन और व्यवहार की एक सम्पूर्ण पद्धति उत्पन्न कर देती है। वर्तमान अध्ययन में बौद्ध तथा मौर्य काल में पत्नी के उत्पीड़न के कारकों को ज्ञात किया गया है। इसे मालूम करने के लिए तात्कालीन समाज में कन्या जन्म से लेकर स्त्री जीवन के अन्त तक उसके प्रति सामाजिक व्यवस्था तथा पुरुष प्रधानता के परिप्रेक्ष्य में उससे किये गए शोषण की स्थिति को अध्ययन में शामिल किया गया है। जिसका विश्लेषण कर उत्पीड़न की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है।

वैदिक काल के अंतिम चरण 200 ई.पू. से नारियों की दशा सोचनीय हो गई थी तथा नारी की इस बदतर स्थिति को बौद्ध धर्म ने सहारा दिया। यह ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी तक रहा। बौद्ध धर्म नारी को अलग करके किए जाने वाले जटिल आडम्बरों, हिंसात्मक तथा खर्चीले यज्ञों तथा कर्मकण्डों के घोर विरोधी था। गजानन शर्मा द्वारा ''प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी'' (1971 - 138) में किये गये उल्लेखानुसार इस काल में न केवल धर्म प्रवण नारियों को ही अपितु कुमारिकाओं, विधवाओं एवं वृद्धाओं, जो तात्कालिक समाज में उत्पीड़ित तथा मानसिक रूप से अशांत थी, लम्पट पति को त्याग करने वाली स्त्रियों, वेश्याओं आदि तिरस्कृत नारियों को भी बुद्ध ने अपने संघ में प्रवेश दिया। इससे उस काल की स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी हुई।

भिक्षुणिओं को आजीवन अविवाहित जीवन व्यतीत करने का नियम था। स्त्रियों को मठ में प्रवेश तो मिल गया था, तथा उसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे। पतन काल में मठ व्यभिचार और वासना के क्रीड़ा स्थल बन गए। जो सामाजिक प्रतिष्ठा बुद्ध ने स्त्रियों को दिलवाई, वह कालान्तर में पुरुष द्वारा भोग - विलास तथा व्यभिचार किये जाने के कारण समाप्त हो गई एवं पत्नियों के शोषण का क्रम जारी हो गया तथा स्त्रियां उत्पीड़ना की शिकार होने लगी।

* शोध अधिकारी (गृह विज्ञान), समाजशास्त्र एवं समाजसेवा विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर - 470 003

मौर्य काल में पत्नी उत्पीड़न –

मौर्यकाल भारतीय इतिहास का नवयौवन[1] माना जाता है। यह युग भारतीय एवं विदेशी संस्कृतियों के सामंजस्य का काल था और संस्कृतियों के इस सामंजस्यात्मक रूप ने ही भारत को नया जीवन प्रदान किया।[2] मौर्य-युग का सूत्रपात क्षत्रिय एवं ब्राह्मण के सफल संयोग का परिणाम था। क्षत्रिय चन्द्रगुप्त एवं ब्राह्मण चाणक्य क्रमशः असाधारण वीरता एवं अद्‌भुत कूटनीतिज्ञता के परिचायक स्तंभ थे।[3] उत्तरी एवं मध्य भारत को क्रमशः ग्रीक एवं अधार्मिक नन्दों से मुक्त कर चन्द्रगुप्त मौर्य ईसा पूर्व 321 में सिंहासनारूढ़ हुआ[4] एवं सम्पूर्ण भारत को एक राजनैतिक इकाई बनाकर प्रथम बार समन्वित एवं सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना कर[5] सम्पूर्ण भारत को एकछत्र के अधीन किया।[6] मौर्य युगीन समाज में नारी की स्थिति अशोक के अभिलेखों, मेगस्थनीज के लेख एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अभिलेखों से प्राप्त होती है।

कन्या – मौर्य युगीन समाज में कन्या जन्म की स्थिति दयनीय थी जो इस बात से स्पष्ट होती है कि कौटिल्य ने बहुविवाह का प्रतिपादन पुत्रों की प्राप्ति की दृष्टि से ही किया था।[7] कौटिल्य के अनुसार नियोग सम्बन्ध भी केवल पुत्र प्राप्ति की दृष्टि से ही स्थापित किया गया।[8] इसमें पुत्री का नाम ही नहीं है। कन्या विवाह के लिए कौटिल्य ने यह विधान भी रखा कि रजोदर्शन के तीन वर्ष पश्चात यदि अविवाहित कन्या समाज जाति तथा कुल के पुरुष का स्वतः वरण करती है तो कोई दोष नहीं है, अतः उनकी दृष्टि से 12 वर्ष की कन्या एवं 16 वर्षीय युवक विवाह के योग्य होते थे।[9] विवाह में कन्या को वर चयन की स्वतंत्रता थी परन्तु वहीं स्ट्रेबो ने मौर्य युग में एक अलग प्रकार की वैवाहिक प्रथा का उल्लेख किया जो किसी भी युग में नहीं मिला। उनके अनुसार गरीब पिता भरे बाजार में अपनी कन्या को खड़ा करता था। शंखनाद से बाजार में जनता का ध्यान कन्या की ओर खींचा जाता था। भावी वर वहाँ कन्या का पूर्णतः निरीक्षण करता था और दोनों पक्षों के राजी हो जाने पर कन्या का विवाह उस पुरुष के साथ कर दिया जाता था।[10] इस तरह स्पष्ट है कि कन्या को हेय दृष्टि से देखना तथा उसको शिक्षा से वंचित कर रजोदर्शन के होते ही विवाह कर देने की परम्परा के कारण कन्याएँ समाज में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर पाती थीं तथा वे उत्पीड़ना का शिकार बनती थीं।

पत्नी – मौर्य युगीन नारी के प्रति कौटिल्य की दृष्टि हेय दिखाई देती थी। परन्तु माँ के रूप में नारी की स्थिति सम्मानजनक थी। जहाँ बहु विवाह प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा थी वहीं स्त्रियों की शैक्षणिक स्थिति, आर्थिक स्थिति सामान्य थी। स्त्रियों की शिक्षा पर किसी प्रकार का बंधन नहीं था। कुछ स्त्रियाँ बौद्ध एवं जैन भिक्षुणी के रूप में देशाटन करते हुए भी विद्यार्जन करती थीं। इस समय भी शिक्षिता नारियों के दो रूप प्राप्त होते है। 1. ब्रह्मावादनी एवं 2. सधोवाहा। इस प्रकार ब्रह्मवादनी हमेशा अध्ययन एवं अध्यापन में रत रहती थी। कुछ शिक्षिताओं ने काव्य रचनाएँ भी की थी। परन्तु दूसरी जगह कौटिल्य नारियों को शिक्षा के अयोग्य मानता था उसकी दृष्टि में स्त्री का मस्तिष्क संकुचित होता है।[11] कौटिल्य नारी को मात्र पुत्रों की उत्पत्ति का साधन मानता था।

इस काल में महिलाओं की आर्थिक स्थिति उन्नत थी, उसे पति की सम्पत्ति पर पूरा अधिकार था। यदि पति तलाक दे तो भी सम्पत्ति एवं आय का कुछ भाग प्राप्त

होता था। दहेज प्रथा जरुर थी परन्तु वह स्त्री धन कहलाता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि विवाहित स्त्रियों के शिक्षा की व्यवस्था तो थी मगर शिक्षा हेतु उन्हें प्रेरित नहीं किया जाता था। इस तरह उन्हें आर्थिक रूप से कष्ट नहीं था। फिर भी तत्कालीन समाज के कूटनीतिज्ञों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण संकीर्ण कहा जा सकता है तथा इस तरह के मन्तव्य स्पष्ट रूप से स्त्रियों के प्रति उत्पीड़ना को प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होते थे।

बहु-विवाह एवं वेश्यावृत्ति – मौर्य कालीन समाज में बहुविवाह एवं वेश्यावृत्ति प्रचलित थी। कौटिल्य ने बहुविवाह का प्रतिपादन पुत्रों की प्राप्ति की दृष्टि से किया था।[12] परन्तु इस प्रथा के कारण पति का स्नेह विभक्त हो जाता था, जो परस्पर संघर्ष, उत्तराधिकार सम्बन्धी वाद-विवाद, दाम्पत्य जीवन में कटुता लाता था। स्त्री ने भी मनुष्य को वश में करने के लिए अपनी पूरी अन्तर्निहित शक्तियाँ लगा दी। यदि वह अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को पहचान कर उसे दिशा देते तो मनुष्य समाज जैसा आज है उससे बहुत बढ़कर होता। जिसकी कल्पना भी नहीं का सकती।

अतएव स्पष्ट है कि पुत्र प्राप्ति के लक्ष्य को सामने रखकर किए जाने वाले बहुविवाह प्रथा के कारण एक पति की कई पत्नियों के मध्य वर्चस्व को लेकर संघर्ष बना रहता था। जो कि पत्नी के उत्पीड़न का स्रोत बनता था।

विवाह विच्छेद – स्त्री-पुरुष दोनों को विवाह विच्छेद का अधिकार था। कौटिल्य को ही स्त्री का पुरुष के समान विवाह विच्छेद का अधिकार दिलाने का श्रेय है।[13] विवाह विच्छेद के बाद आर्थिक अधिकार का दावा करने स्त्री न्यायालय भी जा सकती थी। इसी प्रकार स्त्रियों के प्रति दण्ड विधान उदार तो नहीं था फिर भी अपराध गुरुता की दृष्टि से वह कठोर भी न था।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि स्त्रियों को विवाह विच्छेद एवं तत्पश्चात् प्राप्त होने वाली आर्थिक पूर्ति के लिए अधिकार प्राप्त थे जो कि निश्चित ही आदर्श स्थिति है। स्त्रियां पति द्वारा ताड़ित होने पर उनसे विलग हो सकती थीं एवं स्वत: न केवल ताड़ना से बच सकती थीं बल्कि उनका भविष्य भी आर्थिक रूप से सुरक्षित रहने के कारण मानसिक यंत्रणा से दूर रह पाती थीं।

सती प्रथा – मौर्य युग में सम्पूर्ण समाज में सती प्रथा का चलन नहीं था चूंकि कौटिल्य ने मौर्य युगीन समाज में पुनर्विवाह एवं नियोग प्रथा की ओर संकेत किया है।[14] यूनानी विवरण से ज्ञात होता है कि कुछ जातियों (कंठैयन जाति) में ही सती प्रथा प्रचलित थी। स्ट्रैबो के अनुसार इस प्रथा का लक्ष्य था विधवा स्त्री पुन: किसी युवक के प्रेमपाश में न फँसनें पाये।[15] सती होने से इंकार करनेवाली विधवा स्त्री को हेय दृष्टि से देखा जाता था।

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि जहाँ एक ओर तत्कालीन कूटनीतिज्ञ विधवा के पुनर्विवाह हेतु पक्षधर थे, वही पर कुछ समाजों में सती प्रथा का प्रचलन था। ऐसे समाजों में स्त्रियाँ न केवल मानसिक रूप से उत्पीड़ित होती थी बल्कि पति के साथ सती होने पर शारीरिक ताड़ना का भी शिकार होना पड़ता था।

मौर्योत्तर काल में पत्नी उत्पीड़न –

मौर्य युग में भारतीय समाज बौद्ध विचारधारा से प्रभावित था एवं उसकी समस्त सारणियां बौद्ध नियमानुसार ढल गई थी, किन्तु मौर्य युग के पतनकाल से वैदिक परम्पराएं अपने नए रूपों में ढलने लगी। जैसे मनु ने सर्वाधिक महत्व गृहस्थाश्रम को दिया था। इसका कारण था कि मनु निवृत्तिमार्गी हिन्दू धर्म के पोषक थे, निवृत्तिमार्गी बौद्ध एवं जैन धर्म के विरोध में मनु ने गृहस्थाश्रम पर अधिक बल दिया था। गृहस्थाश्रम ही एक ऐसा आश्रम था जिस पर अन्य तीनों आश्रमों का जीवन निर्भर रहता है।[17]

कन्या – पुत्री पुत्र के समान ही समाज में प्रतिष्ठित स्थान पाती थी।[18] परन्तु मनु ने सिद्धान्ततः पुत्री को पुत्र से निम्न स्थान दिया था।[19] मनु ने बाल विवाह पर पर्याप्त बल दिया था एवं यह माना था कि यौवनावस्था की प्राप्ति के तीन वर्ष पश्चात तक कन्या अविवाहित रखी जा सकती है।[20] यहाँ तक की मनु ने यह भी विधान रखा था कि उपयुक्त वर के अभाव में कन्या आजीवन अविवाहित रह सकती है।[21] मनु के अनुसार कन्या का विवाह वेदाध्ययन विरत, संस्कारहीन एवं रोगी घराने में नहीं करना चाहिए।[22] कन्याओं का बाल विवाह होने के कारण उपनयन संस्कार लुप्तप्राय हो गए थे। अतः मनु के विचार से कन्या को गृहकार्य की ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

अतएव कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म के प्रभाव कम होने तथा ब्राह्मणों का प्रभाव पुनर्स्थापित होने के इस संक्रमण दौर में मिली जुली सभ्यता का आभास परिलक्षित होता है। यह बात इस तरह से स्पष्ट होती है कि जहाँ पर पूर्व मौर्यकाल में स्त्री शिक्षा का महत्व था वही पर ब्राह्मणों द्वारा मौर्योत्तर काल में स्त्री शिक्षा पर जोर नहीं दिया गया एवं उनके केवल गृहकार्य की शिक्षा पर जोर दिया गया। इस तरह से उनको वैदिक शिक्षा से वंचित किए जाने के परिणाम स्वरूप स्त्री की महत्ता में कमी आई जो कि उसके उत्पीड़न का स्रोत बनी।

पत्नी – तदयुगीन समाज में स्त्रियों की स्थिती सम्मानीय थी। मनु की दृष्टि में जिस घर में नारी की पूजा होती है अथवा उसका सम्मान होता है, वहीं पर लक्ष्मी का निवास होता है।[23] वहीं इसके विपरीत नारी के प्रति हीन एवं नारी पराधीनता के विचार भी मिलते हैं। जैसे मनु की दृष्टि में स्त्री के साथ बैठकर भोजन नहीं करना चाहिए।[24] नारी अबला होने के कारण बाल्यावस्था में पिता के, यौवनावस्था में पति के एवं वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती है।[25] मनु के अनुसार पत्नी की समस्त सम्पत्ति पति की सम्पत्ति होती है।[26] इस कारण तद्युगीन समाज में स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता भी नहीं थी। वेद युगीन नारी शिक्षा का क्रम ईसा की प्रथम शताब्दी तक शनैः शनैः कम पड़ता गया। स्त्रियों की परम शिक्षा एवं धर्म उनकी पति सेवा एवं गृह कार्य तक ही सीमित रह गए थे।[27] परन्तु इसके अपवाद शातकर्णि प्रथम के मृत्यु उपरान्त उसकी पत्नी ने ही तब तक शासन संभाला था जब तक कि उसके पुत्र बालिग नहीं हो गये। इसके अतिरिक्त नायनिका, गौतमी, बालश्री आदि स्त्रियों ने भी शासन कार्य में सुचारू रूप से भाग लया था। नायानिका के नानाघाट अभिलेख से स्पष्ट होता है कि नारियाँ अश्वमेघ यज्ञ में भी भाग लेती थी।[28]

अतएव कहा जा सकता है कि मौर्योत्तर युगीन समाज में स्त्रियाँ शिक्षिता एवं कुशल तो होती थीं परन्तु विदुषी एवं अतिशिक्षिता नहीं हो पाती थीं। इसी तरह उनकी आर्थिक परतंत्रता एवं पुरुष पर निर्भरता उन्हें उत्पीड़ित होने के लिये मार्ग प्रशस्त करती थी। वहीं

पर कुछ नारियों ने पति के पश्चात राज्य संभालकर स्त्रियों में जागृति पैदा की जो कि उनके उत्पीड़न को नियंत्रण में रखने में सहायक सिद्ध हुई।

बहुविवाह – मौर्योत्तर युगीन में बहुविवाह से सम्बन्धित कई नियम प्रतिपादित हो गए थे जैसे यदि पति दूसरा विवाह करना ही चाहे तो प्रथम पत्नी की सम्मति लेकर ही कर सकता था।[29] मनु भी द्वितीय विवाह की अनुमति तब देते हैं जब प्रथम स्त्री अप्रियवादनी, वंचिका, अपव्ययकारिणी, रोगिणी, कुलटा एवं मधपा हो।[30] किन्तु पत्नी को अपना द्वितीय विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था। पति चाहे जैसा हो पत्नी के लिए पति का स्थान देवता के तुल्य होता था।[31] केवल विधवा एवं परित्क्गता स्त्री ही पुनर्विवाह कर सकती थी। मनु स्मृति में पुनर्भ शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[32] अतएव सती प्रथा का प्राय: अभाव हो गया था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बहुविवाह होते थे मगर जिन परिस्थितियों में पति दो विवाह कर सकता था, निश्चित ही उन स्थितियों में कोई भी स्त्री अपने पति को अन्य विवाह करने की सम्मति नहीं दे सकती थी। अतएव निश्चित ही प्रत्येक मामले में पत्नी की सम्मति प्राप्त नहीं हो पाती होगी, जो कि पत्नी के साथ उत्पीड़न का कारक थी। वहीं पर परिव्यक्ता एवं विधवा विवाह का प्रचलन उसे सती होने से रोकने में मददगार हुआ तथा उसके उत्पीड़न का मुख्य स्रोत बन्द होता गया।

विवाह विच्छेद, नियोग एवं वेश्याएँ – इस काल में विवाह विच्छेद के भी कुछ नियम थे। पति सिर्फ अशीलवती पत्नी को ही छोड़ सकता था। इसी प्रकार मनु केवल उसी दशा में पति परित्याग की अनुमति देते है जब पति पतित हो।[33] इसी तरह मनु नियोग प्रथा के भी विरोधी थे।[34] वेश्याओं को अधार्मिक, पापिनी मानते हुए मनु ने वेश्याओं को दण्ड देने का विधान भी प्रस्तुत किया।[35]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पति एवं पत्नी को विशेष परिस्थितियों में विवाह विच्छेद करने के समान अवसर प्राप्त थे। इसी तरह वेश्यावृत्ति पर नियंत्रण किया जाना स्त्रियों को समुचित सम्मान दिये जाने का प्रतीक है निश्चित ही ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों का उत्पीड़न कम हुआ होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मौर्य काल में पत्नी उत्पीड़न –

1. शास्त्री नीलकण्ठ, नन्द मौर्य युगीन भारत, भूमिका, पृ. 1।
2. अवस्थी शशि, प्राचीन भारतीय समाज, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1981, पृ. 321 - 322।
3. वही
4. विष्णु पुराण ततश्च नवचैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मण: समुद्धरिष्यति तेषामभावे मौर्या: पृथ्वी मोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एवं चन्द्रगुप्त मुत्पन्न राज्येभिषेक्ष्यति।
5. Mukharjee, Radhakumuda, Chandragupta and his Times, "He figures as the first historical emperor of India in the sense that he is the earliest emperor in Indian history, whose historicity can be established on the solid ground of ascertained chronology".
6. Rai Chaudhary, Hemchandra, Political History of Ancient India, 6th ed. P. 270."With an army of six hundred thousand men, (chandragupta) overran and subdued all India".
7. कौटिल्य, 3.2।
8. कौटिल्य 3.6.।

9. *कौटिल्य 4.12।*
10. स्ट्रैबो मैं. 12.28. पृ. 33, 34।
11. अवस्थी शशि वही पृ. 337।
12. कौटिल्य 3.2।
13. कौटिल्य 3.4, 3.3 अमोक्ष्या भर्तुकामस्य द्विषती भार्या। भार्यायाश्च भर्त्ता परस्परं द्वैषान्मोक्षः स्त्री विप्रकाराद्धा पुरुषरचेन्मोक्षमिच्छेधया गृहीतमस्ये दधात् पुरुष विप्रकाराद्धा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेन्नास्य यथा गृहीतं दधात्। अमोक्षा धर्म विवाहानामिति।
14. कौटिल्य 3.4, 3.6।
15. *स्ट्रैबो मैं. 15.1, 30, पृ. 38 डायोडोरस मैं. 19.33.34, पृ. 202 - 4*
16. वही 5.28, पृ. 33 - 4, 15.62 पृ. 69
17. मनुस्मृति 3.10, 77.80 यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।
18. मनुस्मृति 9.130
19. वही 4.184 - 5
20. वही 9.90
    त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत् कुमारी ऋतुमती सती।
    उर्ध्वतु कालादेतस्माद्विन्देत् सदृशं पतिम्॥
21. वही 9.89
    काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
    न चैवैनां प्रयच्छेतु गुणहीनाय कर्हिचित॥
22. वही 26 - 7
23. अवस्थी शशि वही प्राचीन भारतीय समाज बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1981 पृ. 377
24. मनुस्मृति 4.180 - 10.124।
25. वही 4.43
26. वही 9.2 - 9 पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। रक्षति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्रय मर्हति।
27. मनु स्मृति 8.416।
28. वही 2.67।
29. अवस्थी शाशि प्राचीन भारतीय समाज बिहार हिन्दी अकादमी 1981, पृ. 378।
30. मनुस्मृति 9.99
    या रोगिणी स्यातु हिता संपन्ना चैव शीलतः।
    सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्य च कर्हिचित्॥
31. मनुस्मृति 5.80।
31. वही 5.154
    विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
    उपचर्यः स्त्रिया साधा सततं देववत्पति॥
33. वही 9.176।
34. वही 9.79।
35. वही 9.59, 61।
36. वही 9.259।

प्राप्त - 4.7.97

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 25 - 31

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन नीति पर आधारित राजनीति व अर्थशास्त्र के प्रणेता आचार्य चाणक्य

■ सूरजमल बोबरा *

महापंडित आचार्य चाणक्य को, जो विश्वविख्यात ग्रंथ कौटिल्य के रचयिता हैं, सत्ता परिवर्तन करने वाले महाराजनीतिज्ञ के रूप में देखा जाता है। कभी - कभी तो उन्हें कुटिल नीतियों का वाहक भी प्रतिपादित किया गया है। ऐसा लगता है जिस प्रकार प्रथम भारतीय साम्राज्य के शिल्पी चंद्रगुप्त को दस शताब्दियों तक अंधकार में रखा गया, उस के संदर्भों को ओझल कर दिया गया, उसी प्रकार आचार्य चाणक्य भी ओझल रहे। उनके वास्तविक चरित्र को भी धूमिल करने का प्रयत्न किया गया व उनके द्वारा लिखित ग्रंथों को अज्ञातवास झेलना पड़ा। जैन संदर्भ स्पष्ट रूप से कहते हैं कि चाणक्य और चंद्रगुप्त जैन धर्मावलम्बी थे और हो सकता है इसी कारण उनके संदर्भों को धर्मांधों द्वारा नष्ट किया गया और जो बचे उन्हें शताब्दियों तक अज्ञातवास झेलना पड़ा। धन्यवाद है उन ग्रीक इतिहासकारों को जिन्होंने उनकी शौर्य गाथाओं एवम् आदर्श कार्यकलापों की अपने इतिहास ग्रंथों में चर्चा की। उन्होंने उसका ''सैण्ड्रोकोट्टोस' के नाम से स्मरण किया। सर विलियम जोन्स भी कम श्रद्धास्पद नहीं, जिन्होंने सर्वप्रथम सुझाया कि ग्रीक इतिहासकारों के ''सेण्ड्रोकोट्टोस' ही मौर्यवंशी चंद्रगुप्त (प्रथम) हो सकते हैं। इसी आधार पर प्राचीन भारत के लुप्त इतिहास की खोजबीन की गई और अन्त में यह वास्तविक सिद्ध हुआ। इतिहासवेत्ता राइस डेविस ने अपनी पुस्तक[1] में लिखा है 'चूंकि चन्द्रगुप्त जैन धर्मानुयायी हो गया था इसी कारण जैनेतरों द्वारा वह अगली 10 शताब्दियों तक इतिहास में उपेक्षित रहा।' इतिहासकार टामस भी इसी मत के हैं। मेगस्थनीज के विवरणों से भी यही विदित होता है कि उसने ब्राम्हणों के सिद्धांतों के विरोध में श्रमणों (जैनों) के उपदेशों को स्वीकार किया था।

चाणक्य के ग्रंथों को भी इसी विभीषिका का सामना करना पड़ा। बहुत बाद में जब राष्ट्रवादी आंदोलन प्रारंभ हुए तो प्राचीन पांडुलिपियों के अन्वेषण में तेजी आई। इसके फलस्वरूप 1905 में 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का पता लगा, जिसे शाम शास्त्री ने 1909 ई. में प्रकाशित किय। कौटिल्य का संपूर्ण जीवन एक प्रयोगशाला था। भारत के प्रथम साम्राज्य का शिल्पी होने का गौरव प्राप्त करने के बाद व उस साम्राज्य का महामंत्री होने के बाद भी वह त्याग - तपस्या की मूर्ति थे। तत्कालीन चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है 'जहाँ का प्रधानमत्री साधारण कुटिया में रहता है, वहाँ के निवासी भव्य भवनों में निवास करते हैं।'

कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' में सिद्धांत और व्यवहार, ज्ञान और क्रिया का अद्‌भुत समन्वय है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र यह भी सूचना देता है कि उनके कई शास्त्र थे जो अब उपलब्ध नहीं हैं। यह ग्रंथ जैन सिद्धांतों के ग्रंथ थे या केवल राजनीतिशास्त्र के ग्रंथ थे, इसका खुलासा नहीं है। किन्तु चाणक्य ने जो कुछ लिखा, जिसका प्रयोग किया उसके उपलब्ध सबूत संकेत करते हैं कि वे राजनीतिशास्त्र के ग्रंथ थे जिनका आधार जैन सिद्धांत थे। आगे की पंक्तियों में हम देखेंगे कि 'नीति' सम्बन्धी जो सूत्र चाणक्य ने दिये हैं वे जैनागम के तत्व हैं जिसे आचार्य चाणक्य ने सहज सरल रूप में जनता के कल्याण के लिए व्यक्त किया। उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में स्वयं लिखा है -

* 9 / 2, स्नेहलतागंज, इन्दौर

'पृथिव्यां लाभे पालने व यावन्त्यर्थशास्त्रिणि पूर्वाचार्यै,
प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहत्यैकमिदमर्थ शास्त्रं कृतम।'

अर्थ - प्राचीन आचार्यों ने राज्य की प्राप्ति की, और उसकी सुरक्षा से सम्बन्धित जितने भी राजनीतिशास्त्रों की रचना की है उन सबके सार संग्रह करके मैंने अपना अर्थशास्त्र लिखा है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र से अलग किये गये 'चाणक्य नीति' के सूत्र जैन सिद्धांत के प्रायोगिक स्वरूप हैं।

चाणक्य उद्भट विद्वान थे। उन्होंने वेद पुराण तथा आर्थिक विषयों पर गहन अध्ययन किया था। राजनीतिशास्त्र के तो वे संभवत: ज्ञात सर्वप्रथम अधिकृत प्रवक्ता थे। उन्होंने जो कुछ किया और कहा वह नीति और न्याय की परिभाषा के बीच किया। वे युद्ध, शासन व राजकीय तंत्रों के व्यवस्थापन के व्यावहारिक रूप थे। श्री रामशरण शर्मा के इस मत से सहमत होना पड़ेगा कि बुद्ध के युग में कौशल और मगध जैसे सुसंगठित राज्यों के उत्थान के बाद सबसे पहले कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में राज्य को सात अंगों से युक्त संस्था बतलाया गया। परवर्ती ग्रन्थों में इन अंगों के पारस्परिक संबंधों के बारे में 'अर्थशास्त्र' से कुछ भिन्न बातें कही गई हैं, लेकिन कौटिल्य की परिभाषा में उन्होंने कोई महत्व का परिवर्तन नहीं किया है।

कौटिल्य ने जिन सात अंगों का उल्लेख किया है वे हैं : स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दंड और मित्र। इनका विवेचन सांगोपांग और क्रमबद्ध है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

श्री रामशरण शर्मा का विचार है कि राज्य का उपरोक्त सिद्धांत ब्राम्हण विचारधारा की उपज है। पर पुरोहित को, जिसे हम उत्तरवैदिक राज्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते देखते हैं, तथा अर्थशास्त्र और कौटिल्य के ग्रंथों में भी जिनका प्रभावी स्थान है, राज्य के अंगों में शामिल नहीं किया गया है। इसे विद्वानों ने कौटिल्य का विशेष योगदान माना है। संभवत: जैन चिंतन इसका कारण रहा हो।

यहाँ यह संकेत उपलब्ध हैं कि कौटिल्य के सामने पुरोहित विहीन शासन की व्यवस्था का उपयोगी चित्र उपस्थित था या उनके पास ऐसे शास्त्रीय संदर्भ उपलब्ध थे जिनमें पुरोहित प्रभावित शासन के दुष्परिणामों का अनुभव था। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ में अनाम आचार्यों के मत उदधृत किये हैं अर्थात ऐसे शास्त्र उनके पास थे। 'पुरोहित' को सप्तांग में न रखना धार्मिक सहिष्णुता को राज्य का स्वीकार्य सिद्धांत बनाना है। चाणक्य काल में बौद्ध, जैन और ब्राम्हण धर्म आमने सामने निश्चयपूर्वक रहे होंगे और धार्मिक उन्माद से राष्ट्र को बचाये रखना राजनीति की प्रथम आवश्यकता थी। आचार्य भद्रबाहु, चंद्रगुप्त व चाणक्य जैन थे। चाणक्य के सामने श्रमण संस्कृति के अभ्युदय व पराभव का लेखा-जोखा होगा, वैदिक संस्कृति के उदय, विस्तार व अंतर्विग्रहों तथा कर्मकांडों का लेखा-जोखा होगा। साथ ही विदेशी आक्रमणों के बीच भारतीय साम्राज्य के उदय की संभावित परिस्थितियों का पूर्वानुमान होगा। इसने नीति सम्मत व्यवस्था को मूर्त रूप दिया। यह शास्त्रों और पुराणों के अध्ययन का स्वाभाविक परिणाम था। स्वयं आचार्य चाणक्य ने इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

'प्रणम्य शिरसा देवं त्रैलौक्याधिपतिं प्रभुम।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम्॥[2]

अर्थ - मैं तीनों लोकों के स्वामी भगवान के चरणों को शीष नवाकर प्रणाम करता हूँ, तदुपरांत विभिन्न शास्त्रों से एकत्रित राजनीति के सिद्धांतों का उल्लेख करता हूँ।

'चाणक्यनीति' में आचार्य चाणक्य किन नीति सिद्धांतों को स्वीकार करते थे उनकी झलक उपलब्ध है। चाणक्य जैन सिद्धांतों व शास्त्रों के निरंतर अध्ययन से स्याद्वाद व अनेकान्त से पूर्णत: परिचित थे और उन्होंने जैन आदर्शों को राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया। तभी तो पुरोहित को उन्होंने राज्य का अंग नहीं माना। हिंसा, दान, तप, त्याग, आत्मा, कर्मबन्ध, मोक्ष, धर्म आदि पर आचार्य ने महत्वपूर्ण नीति निर्देशक सिद्धांत समाज को दिये। कुछ का अवलोकन हम यहाँ करते हैं -

मांस भक्ष्ये: सुरापाने: मूर्खैश्चाक्षर वर्जिते:।
पशुभि: पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ता हि मेदिनी॥[3]

अर्थ : मांस खाने वाले, शराब पीने वाले, व निरक्षर व्यक्ति पशु समान हैं और वे पृथ्वी पर भार हैं।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रिया:।
न क्षीयते पात्रे दानमभयं सर्वदेहिनाम्।[4]

अर्थ : सभी प्रकार के दान, यज्ञ, होम तथा बलिकर्म नष्ट हो जाते हैं परन्तु सुपात्र को दिया गया दान तथा सभी जीवों को दिया गया अभयदान न कभी व्यर्थ जाता है न नष्ट होता है।

अधना: धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदा:।
मानवा: स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवता: ॥[5]

अर्थ : धनहीन धन की इच्छा करते हैं, चार पैर वाले पशु वाणी की इच्छा करते हैं, मनुष्य स्वर्गसुख की इच्छा करते हैं किन्तु देवता मोक्ष की इच्छा करते हैं।

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चले जीवित मन्दिरे।
चलाऽचले हि संसारे धर्म एको हि निश्चल: ॥[6]

अर्थ : लक्ष्मी चलायमान है, प्राण चलायमान है (यहां सब कुछ चलायमान है), एक अकेला धर्म है जो चलायमान नहीं है।

दानेन प्राणिर्नतु कङ्कणेन, स्नानेन शुद्धिन तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन, ज्ञानेन मुक्तिर्नतु मण्डनेन॥[7]

अर्थ : हाथों की सच्ची शोभा आभूषण पहनने से नहीं, दान देने से होती है। शरीर की वास्तविक शुद्धि स्नान करने से होती है, चन्दन का लेप लगाने से नहीं। मनुष्य को सच्चा सुख मान सम्मान प्राप्त करने से होता है स्वादिष्ट भोजन करने से नहीं। इसी प्रकार मोक्ष की प्राप्ति भी ज्ञान से होती है, छापा, तिलक आदि बाहरी आडंबरों से नहीं।

एक वृक्षसमारूढा नानावर्णा: विहङ्गमा:।
प्रभाते दिक्षु दशसु का तत्र परिवेदना॥[8]

अर्थ : जिस तरह रात्रि होने पर नाना प्रकार के पक्षी एक ही वृक्ष पर विश्राम करते हैं और प्रात:काल दसों दिशाओं की ओर उड़ जाते हैं इसमें दु:ख कैसा? उत्पत्ति और मृत्यु, संयोग और वियोग तो होता रहता है उसका दु:ख कैसा?

अधीत्येद्मर्थशास्त्रं नरो जानाति सत्तम:।
धर्मोपदेश विख्यातं कार्याकार्य शुभाशुभम्॥[9]

अर्थ : समझदार व्यक्ति शास्त्र को पढ़कर जान जाता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। धर्म का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है जिससे वह नीतिगत

चल सकता है।

उद्योगे नास्ति दादिद्रयं जपतो नास्ति तापकम्।
मौनेन कलहोनास्ति, नास्ति जागरिते भयम्॥[10]

अर्थ : परिश्रमी कभी निर्धन नहीं रह सकता। जप करने वाले के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। मौन से कलह नहीं होता। जागृत व्यक्ति को कभी भय नहीं होता।

धर्मार्थ काममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते
जन्म - जन्मानि लोकेषु मरणं तस्यं केवलम्॥[11]

अर्थ : मानव देह बड़े भाग्य से मिलती है। मानव देह मिलने के पश्चात भी जो व्यक्ति धर्म - अर्थ - काम - मोक्ष को नहीं समझता उसका जन्म निरर्थक है। वह तो संसार में बार - बार मरने के लिए जन्म लेता है और जन्म लेने के लिए ही मरता है।

कर्मायतं फलं पुंसां बुद्धि कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधियश्चार्या: सुविचार्यैव कुवते॥[12]

अर्थ : मनुष्य को कर्मानुसार फल मिलता है और बुद्धि भी कर्मफल से ही प्रेरित होती है। इसे स्वीकार करते हुए विद्वान विवेकपूर्णता से ही कार्य करते हैं।

दृष्टिपूतं न्यसेतपादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मन: पूतं समाचरेत्॥[13]

अर्थ : मनुष्य अच्छी प्रकार देखकर कदम आगे बढ़ाये, वस्त्र से छानकर जल पिये, शास्त्र के अनुकुल वाक्य बोले तथा मन से सोच विचार कर श्रेष्ठ व्यवहार करे।

आयु: कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पन्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन:॥[14]

अर्थ : माँ के गर्भ में आना, उसका जीवन मरण, समय प्रकार, सुख - दुख, अच्छा बुरा, यश अपयश सब कुछ कर्म द्वारा ही पूर्व निर्धारित होता है।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपु:।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति, ज्ञानात्परं सुखम्॥[15]

अर्थ : काम एक असाध्य रोग है, मोह अजेय शत्रु है, क्रोध अग्नि के समान दाहक है, तथा आत्मज्ञान परम सुख है।

जन्म मृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येक: शुभाऽशुभम्।
नरकेषु पतत्येक: एको याति परां गतिम्॥[16]

अर्थ : मनुष्य जन्म भी अकेला ही लेता है। मृत्यु का वरण भी अकेला ही करता है। अपने शुभ - अशुभ कर्मों का फल भी स्वयं ही भोगता है। नारकीय कष्टों को भी अपने कर्मफलानुसार अकेला ही भोगता है और परमगति भी अकेला ही पाता है।

श्रुत्वा धर्म विजानाति श्रुत्वाव्यजति दुर्मतिम।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्रोति श्रुत्वा मोक्षम्वाप्नुयात॥[17]

अर्थ : मनुष्य (सुन) श्रवण कर धर्म में स्थिर होता है, सुनकर ही मनुष्य दुर्गति का त्याग करता है, सुनकर ही ज्ञानवान होता है और सुनकर ही मोक्ष प्राप्ति का साधन करता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद विमुच्यते॥[18]

अर्थ : जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र है। स्वयं उसका फल भोगता है। स्वयं संसार में भ्रमण करता है और स्वयं ही उससे मुक्त होता है।

वाचा शौचं च मनसः शौचमिन्द्रयनिग्रहः।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थि नाम्॥[19]

अर्थ : मन से वाणी की पवित्रता, संयम से इन्द्रियों की पवित्रता और सब प्राणियों के प्रति दया भाव रखने से आत्मा पवित्र होती है।

पुष्पै गन्धं तिले तैलं काष्ठे अग्निः पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः॥[20]

अर्थ : जिस प्रकार पुष्प में गन्ध, तिल में तैल, लकड़ी में आग, दूध में घी और गन्ने में गुड़ नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में अदृश्य आत्मा का निवास है। इस रहस्य को मनुष्य स्वविवेक से ही समझ सकता है।

मुक्तिमिच्छसि चेतात! विषयान विषवत् त्यज।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत् पिब॥[21]

अर्थ : यदि मुक्त होना चाहते हो तो विषयों को विष के समान छोड़ दो। क्षमा, आर्जव (सरलता), दया व शुद्धि को अमृत मानकर ग्रहण करो।

बन्धाय विषयासङ्गो मुक्तये निर्विषयं मनः।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥[22]

अर्थ : मनुष्य के बन्धन और मोक्ष प्राप्ति का कारण केवल मन ही है। विषय वासनाओं में फंसा हुआ मन मनुष्य के बंधनों का कारण होता है। जिस मनुष्य का मन विषय वासनाओं से अछूता है, वह मोक्ष का भागी बनता है।

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मनि।
यत्र तत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥[23]

अर्थ : शरीर को मनुष्य चाहे जितने यत्न से संभालकर रखे तो भी यह नष्ट हो जाता है यह परमात्म ज्ञान है। इस ज्ञान के होते ही मनुष्य का मन जहाँ कहीं भी जाता है वहीं उसके लिए समाधि बन जाती है। अभिप्राय यह है कि यह शरीर क्षणभंगुर है, यह ज्ञान होते ही मनुष्य का देहाभिमान नष्ट हो जाता है।

पुनर्वितं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्व पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः॥[24]

अर्थ : धन, मित्र, पत्नि, भू संपत्ति बार-बार मिल सकते हैं किन्तु मानव जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसका सदुपयोग करना चाहिए।

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणयः कामिनी मांसो योगिभिः कामिभिः श्वभिः॥[25]

अर्थ : एक ही पदार्थ देखने वालों के दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण तीन व्यक्ति उसे अलग-अलग रूपों में देखते हैं। उदाहरण स्वरूप सौन्दर्य मय नारी का शरीर एक योगी की दृष्टि में शवरूप होता है, कामी पुरूष उसे सौंदर्य के भंडार के रूप में देखता है और कुत्तों के लिए वह मांस पिंड है।

यस्य चित्रं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषुः।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलैपनैः॥[26]

अर्थ : जिस मनुष्य का मन प्राणियों को संकाटावस्था में देखकर द्रवित हो जाता है उस

मनुष्य को जटा बढ़ाने, भस्म लगाने, ज्ञान प्राप्त करने तथा मोक्ष के लिए प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

पठन्ति चतुरो वेदान धर्मशास्त्राण्यनेकश:।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा॥[27]

अर्थ : आजकल के पंडित वेद और धर्मशास्त्रों को तो पढ़ लेते हैं किन्तु आत्मज्ञान को नहीं जानते - वे उसी प्रकार होते हैं जैसे स्वादिष्ट पकवानों से गुजर कर भी बेजान कलछी स्वाद विहीन रहती है।

इन नीति सूत्रों का अध्ययन आपने आप में अनोखा अनुभव है। संभवत: अब तक ज्ञात जैन सिद्धांतों की यह संस्कृत में प्राचीनतम अभिव्यक्ति है। इससे पहले शास्त्ररूप में जैन सिद्धांत अवश्य रहे होंगे इस का चाणक्य के अर्थशास्त्र से संकेत मिलता है। 'चाणक्य नीति' पुस्तक के संपादक ने चाणक्य परिचय में लिखा है 'यह ग्रन्थ भी शताब्दियों तक अंधकार में खोया रहा। काफी समय बाद पुरानी पाण्डुलीपियों के बीच मूल प्रति के रूप में, चाणक्य की हस्तलिपि में मिला और इसका प्रकाशन संसार हित में सुलभ हो सका। यदि पुन: अर्थशास्त्र की इस मूल कृति को देखा जाय और इसके साथ रखी पांडुलिपियों को पढ़ा जा सके तो इतिहास के संदर्भ और समृद्ध हो सकते है।'

भूतबलि (ई. 66 - 156) द्वारा रचित षटखंडागम को श्रुतावतार माना गया है। समस्त दि. जैन संदर्भ यही कहते हैं पर जो बातें चाणक्यनीति में (ई. पूर्व 325 के आस - पास) कही गई वे भी तो जैन सिद्धांतों के आधार हैं किन्तु उन्हें आगम का हिस्सा नहीं माना गया। इसका कुछ भी कारण हो किन्तु जैन साहित्य के सूत्र चाणक्य और उसके पहले तक जाते हैं। जैन शोधार्थियों को इसे गंभीरता से लेना होगा। चाणक्य अर्थात भद्रबाहु प्रथम के काल व श्रुतावतार के बीच कम से कम करीब 350 - 375 साल का अंतर है तो क्या जैन मनीषियों ने इस बीच कुछ नहीं लिखा? इस प्रश्न का उत्तर हमें ढूँढना ही होगा।

संभवत: आगम उसे ही माना गया जिसमें शुद्ध सिद्धांतों का ही विवेचन हो और अन्य जैन संदर्भों को ठुकरा दिया गया हो। इन सबको पहचानना अत्यंत आवश्यक है। इन्हें पहचाने बिना वह खाई नहीं पटेगी जो जैन इतिहास की वास्तविकता को अपने में दबाये बैठी है।

यहाँ यह दोहराना ठीक रहेगा कि आचार्य चाणक्य के बारे में केवल जैन संदर्भ ही पूर्ण विवरण देते हैं। जैनेतर संदर्भ उनके उत्तरवर्ती जीवन के बारे में मौन हैं। कवि हरिषेण ने लिखा है 'अपना लक्ष्य पूरा कर चाणक्य ने जैन दीक्षा ले ली। वह अपने 500 शिष्यों के साथ गतियोग (पदयात्रा) से दक्षिणापथ स्थित 'वनवास' स्थल पर पहुँचा और वहीं से महाक्रोंचपुर मे एक गोकुल नाम के स्थान में वह ससंघ कायोत्सर्ग मुद्रा में बैठ गया। वहीं सुबन्धु नामक मंत्री ने ईर्ष्यावश व बदले की भावना से चाणक्य के चारों ओर घेराबंदी कर आग लगवा दी जिससे सभी साधुओं के साथ उनकी मृत्यु हो गई।' कवि हरिषेण ने अंत में लिखा है कि दिव्यक्रोंचपुर की पश्चिम दिशा में चाणक्य मुनि की एक निषद्या बनी हुई है, जहाँ आजकल (कवि हरिषेण के समय 10 वीं सदी में) भी साधुजन दर्शनार्थ जाते रहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

1. चाणक्य - चंद्रगुप्त - कथानक एवम् राजा कल्किवर्णन: महाकवि रइधूकृत:, संपादन एवम् अनुवाद - डा.

राजाराम जैन,
2. जैन साहित्य का इतिहास : पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, भा. दि. जैन संघ, मथुरा
3. Buddhista India - Rice Davis
4. Jainism In North India - C.J. Shah
5. बृहत्कथाकोष: हरिषेणाचार्य
6. प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवम् संस्थाये: रामशरण शर्मा
7. प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवम् सामाजिक संरचनाएं: रामशरण शर्मा
8. भारत का इतिहास : रोमिला थापर, राजकमल
9. 'अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य' : संपादक आर. श्याम शास्त्री
10. 'चाणक्य नीति' : प. विष्णुशर्मा

विशेष : आचार्य चाणक्य की जीवनी पर कई कथाएं प्रचलित हैं, जिनका जैन और बौद्ध कथाओं में बहुत कुछ साम्य है किन्तु वैदिक कथाओं में भिन्नता है उस पर अलग से विचार किया जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि युनानी, चीनी, तिब्बती व श्रीलंकाई संदर्भ भारत के प्राचीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालतेहैं किन्तु भारतीय संदर्भ मौन हैं, जो हैं वे भी विरोधाभासी हैं। स्वतंत्रता के 50 वर्षों के बाद भी भारत का इतिहास विशेषकर सांस्कृतिक इतिहास आज भी निष्पक्ष विचारकों और इतिहासकारों से शोध की मांग करता है।

सन्दर्भ स्थल :

1. The Buddhista India, Rice Devis, P. 164.
2. चाणक्य नीति, विष्णु शर्मा, अध्याय - 1, श्लोक - 1, संक्षिप्त: 1 / 1
3. वही, 8 / 21
4. वही, 16 / 14
5. वही, 6 / 18
6. वही, 6 / 20
7. वही, 17 / 12
8. वही, 10 / 15
9. वही, 1 / 2
10. वही, 3 / 11
11. वही, 3 / 20
12. वही, 13 / 17
13. वही, 10 / 2
14. वही, 4 / 1
15. वही, 5 / 12
16. वही, 5 / 13
17. वही, 6 / 1
18. वही, 6 / 9
19. वही, 7 / 19
20. वही, 7 / 20
21. वही, 9 / 1
22. वही, 13 / 11
23. वही, 13 / 12
24. वही, 14 / 3
25. वही, ...
26. वही, 15 / 1
27. वही, 15 / 12

प्राप्त - 13.2.99

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

पूर्व वर्षों की भांति वर्ष 1998 के पुरस्कार हेतु विज्ञान की किसी एक विधा यथा गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को समग्र रूप में रेखांकित करने वाली 1994-98 के मध्य प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हिन्दी/अंग्रेजी में लिखित मौलिक कृतियाँ **28.02.1999** तक सादर आमंत्रित की गई थी। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है।

वर्ष 1999 के पुरस्कार हेतु जैनधर्म की किसी भी विधा पर लिखित अद्यतन अप्रकाशित मौलिक एकल कृति 30.9.99 तक आमंत्रित है। प्रविष्टियों हेतु निर्धारित आवेदन पत्र एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

ज्ञानोदय पुरस्कार - 98

श्रीमती शांतादेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कर की स्थापना 1998 से की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलतः यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान को रु. 5,001=00 की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

1994-98 की अवधि में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित जैन इतिहास/पुरातत्व विषयक मौलिक शोधपूर्ण लेख/पुस्तक के आमंत्रण की प्रतिक्रिया में 31.12.98 तक हमें 6 प्रविष्ठियाँ प्राप्त हुईं। इनका मूल्यांकन **प्रो. सी. के. तिवारी,** से.नि. प्राध्यापक-इतिहास, **प्रो. जे.सी. उपाध्याय,** प्राध्यापक-इतिहास एवं **श्री सूरजमल बोबरा** के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया गया। निर्णायक मंडल की अनुशंसा पर **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल,** अध्यक्ष-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने ज्ञानोदय पुरस्कार - 98 की निम्नवत् घोषणा की है -

डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, पूर्व निदेशक-रामकथा संग्रहालय (उ.प्र. सरकार का संग्रहालय), अयोध्या, निवास - 223/10, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ। ***जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य,*** अप्रकाशित पुस्तक।

डॉ. रस्तोगी को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा शीघ्र ही आयोजित होने वाले समारोह में इस पुरस्कार से सम्मानित किया जायेगा। 1999 के पुरस्कार हेतु 1995-99 की अवधि में प्रकाशित/अप्रकाशित मौलिक शोधपूर्ण लेख/पुस्तकें आमंत्रित हैं। प्रस्ताव पत्र का प्रारूप एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 33 - 36

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन आगम साहित्य में अर्थ चिंतन

■ गणेश कावड़िया *

समन्वित मानव जीवन और उसके विकास के लिये चार पुरूषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष बताये गये हैं। इसमें अर्थ को महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिये जैन आगम साहित्य में अर्थ पर काफी चिंतन मिलता है। धन अर्थात् सम्पत्ति के स्वरूप उसकी प्रकृति तथा उसके उपभोग पर काफी चिंतन तथा दिशा निर्देश मिलते हैं। इनका पालन किया जाये तो एक सुख तथा शान्ति युक्त समाज की स्थापना हो सकती है। जैन दर्शन धर्म के दो स्वरूप को मानता है। प्रथम जीवनव्यापी धर्म तथा द्वितीय नियत् कालिक धर्म। जीवनव्यापी धर्म में व्यक्ति अपनी समस्त क्रियाओं को करते हुये धर्म के फल को प्राप्त कर सकता है। इसे अणुव्रत का सिद्धान्त कहते हैं। भगवान महावीर ने कहा कि **''धम्मेणं विते कप्पेमाणा''**[1] अर्थात अल्प इच्छा वाला व्यक्ति धर्म के साथ अपनी आजीविका चलाता है।

नव जैन साहित्य में अर्थ पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया अत: यह मत प्रतिपादित किया जाने लगा कि जैन धर्म अर्थ को उचित स्थान नहीं देता है। वास्तव में जैन दर्शन में श्रावक के लिये विभिन्न नियमों के अन्तर्गत उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा अर्थतंत्र के बारे में विचार मिलते हैं। **असिकर्म, मसिकर्म**[2] आदि में मनुष्य के पुरूषार्थ के बारे में निर्देश मिलते है। इन नियमों से एक ऐसे अर्थतंत्र का विकास हो सकता है जिसमें विकास मानव केन्द्रित हो तथा सम्पूर्ण विश्व में सुख तथा शान्ति की स्थापना हो सकती है। आज जब पूरा विश्व अशांति तथा तनाव से ग्रस्त है ऐसे में जैन दर्शन एक ऐसे अर्थतंत्र की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकता है जो मानव के भावनात्मक विकास में सहायक हो। इस आलेख में जैन आगमों के उन कथनों की विवेचना करने का प्रयास किया है जिनका संबंध अर्थतंत्र से है।

वृत्ति कला का ज्ञान

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पूर्व कल्पवृक्ष काफी मात्रा में थे अत: मनुष्य को धन अर्जन करने के लिये कोई कर्म अर्थात पुरूषार्थ नहीं करना पड़ता था। जब भी कोई आवश्यकता हुई, वे कल्प वृक्ष से मांग लेते थे। इसलिये व्यक्ति को किसी वृत्ति की आवश्यकता नहीं होती थी। जब भगवान ऋषभदेव के काल में कल्प वृक्षों का क्षय होने लगा तब समाज और समुदाय को यह चिंता होने लगी कि व्यक्ति अपनी आवश्यकता की तृप्ति कैसे करे? यह डर लगने लगा कि कहीं मनुष्य अपनी उदर पूर्ति के लिये जीवों का भक्षण करने लगे। इन परिस्थितियों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने मनुष्य को वृत्ति अर्थात व्यवसाय का ज्ञान दिया। उस समय कृषि ही मुख्य क्रिया संभव थीं। कृषि में भूमि, सिंचाई, श्रम तथा साधन (पूँजी) की चर्चा की जो औपचारिक अर्थशास्त्र में उत्पादन के साधन कहलाये। इस अर्थ में ऋषभदेव अर्थशास्त्र के भी जनक हैं।

कृषि कला अर्थात जीवन वृत्ति के लिये प्रकृति का संरक्षण आवश्यक था। अत: जैन आगम में संचित वनस्पति को नष्ट करना पाप माना गया है। वनस्पति का पोषण करो और उससे फल प्राप्त करो। इस प्रकार उन्होंने ऐसी वृत्ति का सूत्रपात किया जिसमें

* रीडर - अर्थशास्त्र, दे. अ. वि. वि., इन्दौर। निवास : अहना अपार्टमेन्ट, 334, इन्द्रपुरी कालोनी, इन्दौर।

उत्पादन के साधनों का क्षय नहीं होता है। जैन आगम में वृत्ति संसाधनों के सृजन को महत्व देती है। अत: संसाधन संकट की स्थिति की कल्पना भी नहीं की है। इस स्वरूप में उत्पादन प्रकृति के अनुरूप तथा निकट होने के कारण पर्यावरण तथा पारिस्थितिकीय असंतुलन का संकट उत्पन्न होने की स्थिति नहीं रहती है। इसके विपरीत आधुनिक अर्थतंत्र ने ऐसी उत्पादन प्रक्रिया अपनायी है जिससे सदैव संसाधन संकट का भय बना रहता है। कैसी विडंबना है कि एक तरफ तो हम पर्यावरण तथा जीवों को नुकसान पहुँचाते हैं और दूसरी ओर उनके संरक्षण की योजनाओं पर करोड़ों रूपये व्यय करते हैं। जैन दर्शन इस प्रकार के उत्पादन तथा वृत्ति का निषेध करता है।

जैन दर्शन उत्पादन के स्वरूप में साधन की पवित्रता को आवश्यक मानता है। उत्पादन के संदर्भ में जैन आगम में तीन निर्देश मिलते हैं[3] -

1. **अहिंसप्पयाणे** – हिंसक शस्त्रों का निर्माण न करना
2. **असंजुताहिकरणे** – शस्त्रों का संयोजन नहीं करना
3. **अपावकम्मोवदेसे** – पाप कर्म का, हिंसा का प्रशिक्षण न देना

ये उत्पादन के लिये महत्वपूर्ण निर्देश हैं, वृत्ति समाज के लिये आवश्यक है लेकिन यह भी आवश्यक है कि वह शस्त्रों का निर्माण न करें, न संयोजन करे और न ही उनका व्यापार करे। विश्व शान्ति का यह कितना अचूक सिद्धान्त है? इसके चलते कभी युद्ध और कब्जे की संभावना नहीं रहती है। आज का विश्व पहले तो करोड़ों के संसाधन लगाकर आधुनिक से आधुनिक शस्त्रों का निर्माण करता है और फिर निशस्त्रीकरण के लिये दबाव डालता है। वास्तव में हथियारों के निर्माण पर ही प्रतिबंध आवश्यक है। जैन आगम उनके विकास और निर्माण को धर्म संगत नहीं मानता है। आज इतने खतरनाक हथियार उपलब्ध है कि कुछ ही समय में पूरे विश्व को तबाह किया जा सकता है। इस भय से तो अशान्ति तथा तनाव ही बढ़ाया जा सकता है।

अर्थ उपार्जन

जैन आगम में सबके लिये कर्म अर्थात पुरूषार्थ आवश्यक बताया है। वस्तुत: कर्मवाद का सिद्धान्त पुरूषार्थ को छोड़ने के लिये नहीं अपितु कर्मों के क्षय करने के उद्देश्य से पुरूषार्थ की प्रेरणा देता है। इस प्रकार इसमें कर्मों की शुद्धता पर जोर दिया जाता । इसलिये जैन दर्शन में कर्मों को क्षय करने के उद्देश्य से श्रम करने वाले को श्रमण कहा गया है। अत: पुरूषार्थ को आवश्यक बताया गया, लेकिन धन संग्रह के लिये नहीं।

जैन दर्शन का मानना है कि धन (सम्पत्ति) पुण्योदय या भाग्य से मिलता है। समान पुरूषार्थ (श्रम) करने पर भी व्यक्तियों को सम्पत्ति एक समान नहीं मिलती है क्योंकि इनके पुण्य अलग-अलग है। प्रबल पुण्य का उदय हो तो अल्प पुरूषार्थ से भी बहुत धन की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन पुण्य अल्प हो तो अत्यधिक पुरूषार्थ (श्रम) करने पर भी सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं होती है। सम्पत्ति की प्राप्ति में भाग्य (पुण्य) की प्रधानता है। लेकिन भाग्य का फल पुरूषार्थ करने पर ही मिलता है। अत: पुरूषार्थ भाग्यरूपी ताले की चाबी है। धन जैसा भाग्य होगा उसी के अनुरूप मिलेगा। इसलिये जैन दर्शन में धन के उपार्जन का निषेध नहीं है। लेकिन इसके उपयोग पर काफी निर्देश देता है। भगवान

महावीर के ये शब्द बड़े सार्थक हैं - **''कमाणे अहं अप्प वा बहुंवा परिगहं परिच्च इस्सामी''**[4] इसमें एक ओर परिग्रह के परित्याग, विसर्जन की भावना है तो दूसरी और अर्जन की भावना है। धन के संग्रह तथा भाग को अशुभ माना गया है। इससे अशुभ कर्मों का बन्धन होता है। धन के उचित उपयोग तथा दान आदि क्रियाओं को शुभ माना गया है। इस प्रकार इसमें धन के अर्जन पर नहीं उसके भाग तथा परिग्रह पर परिमाण का विधान है।

व्यक्ति के लिये पुरुषार्थ (कर्म) आवश्यक है अत: उसकी प्रकृति के बारे में काफी निर्देश मिलते हैं। ग्रहस्थ के लिये पन्द्रह कर्मदानों का निषेध बताया गया है। जैसे **इंगल कम्मे, वण कम्मे, फोड़ी कम्मे**[5] अर्थात जंगल जलाकर कोयले का निर्माण करने, तालाब को सुखाने, भूमि के उत्खनन आदि का निषेध किया है। इसी प्रकार व्यक्तियों को अर्थाजन करते समय पाँच बातों का ध्यान रखने के भी निर्देश हैं।

1. बंध न करना
2. बध न करना
3. छविच्छेद न करना
4. अतिभार नहीं लादना
5. भक्तपान का निषेध करना

इस प्रकार जैन दर्शन अर्थाजन में साधन की शुद्धि को मुख्य मानता है। आज का अर्थतंत्र उत्पादन की अधिकता पर इतना अधिक जोर देता है कि उत्पादन के साधन गौण हो गये हैं। अब तो वैज्ञानिकों ने ऐसे इंजेक्शन बना लिये हैं जिनके लगाने से आप गाय के स्तनों से अधिक दूध निकाल सकते हैं। आगे गाय का क्या होगा? कितना अलपकालीन सोच है? कितना भ्रमित विकास है? लाभ के लिये हजारों ऐसी वस्तुऐं उत्पादित की जा रही हैं जिनका मानव के भौतिक, सांस्कृतिक तथा भावात्मक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैन आगम ऐसे उत्पादन को निषेध मानता है।

उपभोग

अर्थशास्त्र में उपभोग का अध्ययन महत्वपूर्ण है। औपचारिक अर्थशास्त्र की मान्यता है कि व्यक्ति उपभोग से प्रेरित होकर उत्पादन करता है। जैन आगम इसे नहीं मानता है। मनुष्य की इच्छा असीमित है। **''इच्छा हु आगाससमा अणंतया''**[6] अर्थात इच्छाओं को दमन या नष्ट मत करो। जैन दर्शन इच्छा का संयम अर्थात सीमाकरण के निर्देश देता है। आवश्यकतानुसार उपभोग करो। उत्पादन और वस्तुओं से आवश्यकता के सृजन को निषेध करता है। इच्छाओं का परिणाम करने पर बल दिया गया है। भगवान महावीर ने कहा **''इच्छाओं को संतोष से जीतो''**[8]। अग्नि में ईंधन डालकर उसे बुझाया नहीं जा सकता, वैसे ही इच्छा की पूर्ति के द्वारा इच्छाओं को संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। इच्छा और भोग में वृद्धि भौतिक तृप्ति में योगदान कर सकती है। लेकिन सुख की प्राप्ति नहीं करा सकती है। आज पूरा अर्थतंत्र मांग के सृजन करने में लगा हुआ है। इस पर कोई विचार नहीं किया जा साता कि ये वस्तुऐं हमारे लिये उपयोगी हैं अथवा नहीं। नये-नये रीति-रिवाज प्रतिपादित कर मनुष्य को उपभोग के मायाजाल में फंसा दिया जाता है। इससे वह पूरे समय अर्थाजन में लगा रहता है और वह आत्म विकास के लिये समय नहीं निकाल पाता है। ऋषियों और मुनियों ने अपनी इच्छाओं का परिमाण करके ही मानव

केन्द्रित संस्कृतियों का विकास किया है। मनुष्य को अपनी इच्छाओं का सीमांकन कर भावानात्मक तथा आत्म विकास के लिये काम करना चाहिये। जैन धर्म का मानना है कि व्यक्ति को पुण्योदय से धर्म करने योग्य साधन तो मिल सकते है लेकिन बिना पुरूषार्थ धर्म नहीं हो सकता है। अत: धर्म में समय तथा साधन लगाने के निर्देश मिलते हैं। इसलिये ऐसे पुरूषार्थ करने चाहिये जिसमें कर्मों का बन्ध न हो। यह उपभोग के परिमाण से ही संभव है।

अर्थतंत्र का स्वरूप

अर्थशास्त्र में उपभोग, उत्पादन तथा वितरण का अध्ययन होता है। व्यक्ति अधिकतम के आधार पर इन क्रियाओं को क्रियान्वित करता है। इसके प्राप्त करने के लक्ष्य में भिन्नता के कारण अलग-अलग अर्थतंत्र जैसे पूँजीवाद, साम्यवाद, सामन्तवाद आदि अस्तित्व में आये। इन सब अर्थतंत्रों में अधिक कल्याण/संतोष लक्ष्य है। लेकिन उसको प्राप्त करने की विधि (मॉडल) अलग-अलग है। जैन आगमों में भी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन के संबंध में निर्देश मिलते हैं। जैन दर्शन **अल्पेच्छा** और **अल्पारंभ**[7] यानि विकेन्द्रित अर्थनीति पर जोर देता है। उनका मानना है कि केन्द्रीयकरण ''शोषण'' की प्रवृत्ति को उभारता है। शोषण समाज में हिंसा और तनाव को उत्पन्न करता है। जैन दर्शन का दिग्व्रत - **दिशा का परिमाण, अर्थव्यवस्था के स्वालम्बन**[8] पर जोर देता है। इसके लिये आर्थिक ढाँचा अहिंसा तथा सत्य पर आधारित होना चाहिये। यह दर्शन ऐसे अर्थतंत्र के विकास की बात करता है जिसमें मनुष्य तथा प्रकृति के बीच सच्चा समन्वय हो। विकास मानवता प्रधान हो। समाज का आर्थिक विकास मानव केन्द्रित होना चाहिये। अत: अहिंसा, शान्ति, करूणा और मानवता को ध्यान में रखकर अर्थतंत्र का पुनरावलोकन करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ स्थल एवं ग्रन्थ :

1. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का अर्थशास्त्र, आदर्श साहित्य संघ, चुरू, पृ. सं. 35
2. आदि पुराण 16/179
3. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का अर्थशास्त्र, आदर्श साहित्य संघ, चुरु, पृ. सं. 42
4. देखें संदर्भ-1
5. उपासकदशांग, सूत्र 1/38
6. उपासकदशांग, सूत्र 1/38
7. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का अर्थशास्त्र, पृ. सं. 129-130
8. वहीं

प्राप्त - 7.8.98

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमीं, दिनांक 18 जून' 99, शुक्रवार

प्राकृत भाषा दिवस

उत्साहपूर्वक मनायें।

— राष्ट्रसंत आचार्य विद्यानन्द

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 37 - 44

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्राचीन पंजाब का जैन पुरातत्व

■ पुरुषोत्तम जैन एवं रवीन्द्र जैन *

जैन इतिहास में प्राचीन पंजाब की सीमा

जब हम पंजाब की बात करते हैं तो इस का अर्थ सप्तसिन्धु प्रदेश वाला पंजाब है। क्योंकि पंजाब नाम मुस्लिम शासकों की देन है। प्राचीन काल से ही पंजाब की कोई भी पक्की सीमा नहीं रही। सप्तसिन्धु प्रदेश भगवान महावीर के समय छोटे - छोटे खण्डों में बंट गया था। जिनमें कुरू, गंधार, सिन्धु, सोविर, सपादलक्ष्य, मद्र, अग्र, काश्मीर आदि के क्षेत्र प्रसिद्ध थे।

तीर्थंकर युग में प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव के छोटे पुत्र बाहुबली की राजधानी तक्षशिला थी। 16 वें तीर्थंकर शांतिनाथ जी, 17 वें तीर्थंकर श्री कुंथनाथजी, 18 वें श्री अरहनाथजी का जन्म स्थान कुरू देश की राजधानी हस्तिनापुर में है। इनके अतिरिक्त दिगम्बर जैन साहित्य में तीर्थंकर मल्लिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर का सप्तसिन्धु क्षेत्रों में पधारने का वर्णन उपलब्ध है। जैन तीर्थंकरों ने जनभाषा को प्रचार का माध्यम बनाया। भगवान पार्श्वनाथ ने बहुत समय काश्मीर, कुरू व पुरू देशों में भ्रमण किया।

इस क्षेत्र का एक भाग अर्थ केकय कहलाता था। भगवान महावीर ने अपने साधुओं को इस देश तक भ्रमण करने की छूट दी थी। क्योंकि भगवान महावीर के समय में आर्य व अनार्य देशों के रूप में इस क्षेत्र का विभाजन हो चुका था। आर्य क्षेत्रों में साधु - साध्वी को मर्यादा अनुसार भोजन मिलता था। इन आर्य क्षेत्रों को भगवान महावीर ने स्पर्श का सौभाग्य प्रदान किया। इसका वर्णन हमें श्वेताम्बर ग्रन्थ आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति आदि में मिलता है। वह थूनांक (स्थानेश्वर) सन्निवेश पधारे थे। शायद यह मार्ग उन्होंने उत्तरप्रदेश के कनखल हरिद्वार मार्ग के माध्यम से पूर्ण किया हो।[1] श्री भगवती सूत्र के अनुसार प्रभु महावीर सिन्धु के नरेश उदयन की प्रार्थना पर लम्बा विहार करके वीतभय पत्तन पधारे थे। प्रभु ने वहाँ चातुर्मास किया एवं राजा को दीक्षित किया।[2] वापसी में अर्ध केकय देश में घूमते हुए कश्मीर, हिमाचल की धरती से मोका नगरी पधारे।[3]

धर्म प्रचार करते हुए प्रभु महावीर वापसी पर रोहितक नगर पधारे।[4] इन बातों का वर्णन श्वे. जैन आगमों में यत्र - तत्र मिल जाता है। जिन क्षेत्रों का ऊपर वर्णन किया गया है वे क्षेत्र वर्तमान पंजाब, हरियाणा, सिंध, पाकिस्तान, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, देहली, उत्तर - प्रदेश में पड़ते हैं।

भगवान महावीर के बाद सप्तसिन्धु प्रदेश में जैन धर्म की स्थिति बहुत अच्छी रही, जिसका प्रमाण हमें मौर्य एवं नंद राजाओं द्वारा जैन धर्म को ग्रहण करने में मिलता है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को सारे भारत पर साम्राज्य करने का सौभाग्य मिला। जैन ग्रंथों में चन्द्रगुप्त मौर्य व इसी वंश के अन्य सम्राटों के बारे में विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। सम्राट चन्द्रगुप्त ने तो जीवन के अन्त में मुनिधर्म ग्रहण किया था। यद्यपि अशोक बुद्ध धर्म को मानता था, पर उसके प्रत्येक शिलालेख में जैन धर्म का प्रभाव उपलब्ध है। देहली के शिलालेख में भी निर्ग्रन्थ, ब्राह्मण, नियतिवादी व श्रमणों (बौद्धों) को एक साथ संबोधित किया गया।

जैन धर्म की परम्परा के अनुसार राजा सम्प्रति ने जैन धर्म का प्रसार समस्त

* विमल कोल डिपो, पुराना बस स्टेण्ड के सामने, मालेरकोटला (पंजाब)

विश्व में किया। उस काल के मंदिर व प्रतिमाऐं गुजरात, राजस्थान आदि प्रान्तों के प्राचीन मंदिरों आदि में दृष्टिगोचर होतीं हैं।

इसी बीच कलिंग सम्राट खारवेल ने 161 ई.पू. में जैन धर्म को राज्य धर्म घोषित किया। उसके खण्डगिरि के शिलालेख में उत्तरापथ के राज्य को विजित करने का उल्लेख है। यह राजा 15 वर्ष की अल्पायु में सिंहासन पर बैठा। इसने खण्डगिरि व उदयगिरि में जैन मुनियों के लिए गुफाऐं निर्मित की।[5] कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण ने महामेघवाहन भिक्षराज खारवेल द्वारा कश्मीर व गंधार देश विजयकर पशुबलि बंद करने एवं मंदिर निर्माण का उल्लेख है। राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी ने इस क्षेत्र में विपुल शोध कार्य कराया है। श्वे. परम्परा के आचार्य श्री विमल मुनि जी का कथन है कि 'आज भी इस राजा के वंशज मेधा कहलाते हैं।'

कल्हण के एक उल्लेख में अशोक को श्रीनगर का निर्माता व जैन धर्म का परम श्रावक माना गया है।[6]

इसके बाद जैन धर्म को राजनैतिक आश्रय मिलना बंद हो गया। जैन धर्म का उत्तर भारत से पलायन होना मौर्य काल में शुरु हो गया था। गुप्त काल में जैन धर्म की अच्छी स्थिति का वर्णन हिन्दू पुराणों में उपलब्ध है।[7] जैन धर्म को गुप्त काल के बाद नुकसान पर नुकसान उठाना पड़ा।

वर्तमान पंजाब में जैन धर्म

जैन धर्म हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा। 8 वीं सदी तक तो यह धर्म अपने परमोत्कृष्ट पर था। पंजाब में जैन धर्म को दो जातियां प्रमुख रूप से मानती हैं। 1. ओसवाल 2. अग्रवाल। पहली जाति का संबंध ओसीया (राजस्थान) से है। यह लोग राजस्थान से सिंध, पंजाब, गंधार तक फैले जिन्हें स्थानीय भाषा में भावड़ा भी कहा जाता है। यह अधिकांश श्वेताम्बर सम्प्रदाय को मानते हैं।

एक मान्यतानुसार अग्रवाल जाति का जन्म स्थान हिसार जिले का अग्रोहा गांव है। जहां विक्रम की 8 वीं शताब्दी में लोहिताचार्य ने अग्रवालों को जैन धर्म में दीक्षित किया। अग्रवाल प्रमुख दिगम्बर परम्परा की जाति है। दिगम्बर पट्टावलियों के अनुसार काष्टा संघ की स्थापना भी अग्रोहा में हुई थी।

इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रसार करने में श्वेताम्बर परम्परा के खरतरगच्छ तथा तपागच्छ के आचार्य यतियों के अतिरिक्त स्थानकवासी व तेरहपंथ मुनियों का प्रमुख योगदान है। महाराज कुमारपाल ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर यहां जैन धर्म फैलाया था। राजा कुमारपाल के समय जैन धर्म काश्मीर और गंधार तक पनप चुका था।[8]

आचार्य उद्योतन सूरि रचित कुवलयमाला ग्रंथ में पंजाब में जैन धर्म की छठी सदी की स्थिति का पता चलता है।

खरतर गच्छ के दादा श्री जिनचन्द्र सूरिजी और दादा श्री जिनकुशल सूरि ने अनेकों स्थलों पर जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया। कालकाचार्य कथा में 2 सरी सदी में पंजाब में जैन धर्म की स्थिति का अच्छा विवरण है। समस्त मुस्लिम शासकों के साथ जैनाचार्यों के अच्छे सम्बन्ध रहे हैं। इस क्रम में जिनप्रभु सूरि, हीराविजय जी, जिनचन्द्र सूरि आदि श्वे. जैनाचार्यों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस संदर्भ में हम एक ग्रंथ **विज्ञप्ति त्रिवेणी** का उल्लेख जरुर करना चाहेंगे। प्रस्तुत ग्रंथ मुनि श्री जिनविजय जी ने ढूंढा था। इस ग्रंथ में विक्रम की 14-15 वीं शताब्दी के जैन धर्म पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इसमें आचार्य श्री जिनभद्रजी, उनके शिष्यों श्री जयसागर, मेघराज गणि, सत्यरूचि, मतिशील व हेमकुंवरजी की कांगड़ा तीर्थ की यात्रा का वर्णन है। इस वर्णन के साथ-साथ तत्कालिक पंजाब की भौगोलिक स्थिति व पंजाब में जैन मंदिरों की स्थिति का सुन्दर वर्णन है। वि.सं. 1484 में यह यात्रा सम्पन्न हुई थी। उस समय कांगडा का राजा कटोज वंशज नरेशचन्द जैन धर्म का प्रमुख श्रावक था। आचार्य श्री सिन्ध (वर्तमान पाकिस्तान) के क्षेत्रों से विचरण करते हुए कांगडा क्षेत्र में पहुंचे थे। रास्ते में उन्हें व्यास नदी के पास फरीदपुर (पाकपटन) तलपटन (तलवाड़ा), देवालपुर, कंगनपुर (पाकिस्तान) हरियाणा (होशियारपुर जिला) नगर आए थे। वापिसी में वह गोपाचलपुर (गुलेर हिमाचल), नन्दपुर (नादौन) कोटिल ग्राम (कोटला) होते हुए लम्बा समय धर्म प्रचार करते रहे।

वि.सं. 1345 में श्रावक हरीचंद ने कांगड़ा तीर्थ के दर्शन किये। इस के अतिरिक्त वि.सं. 1400, 1422, 1440, 1497, 1700 तक कांगड़ा तीर्थ पर किले में स्थित भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा के दर्शन करने वालों का उल्लेख मिलता है।

इन्हीं संदर्भों में हम प्राचीन पंजाब के पुरातत्व स्थलों का अध्ययन करेंगे। इन स्थलों में कुछ प्रमुख स्थलों का वर्णन इस प्रकार है।

1. हड़प्पा –

सिन्धु घाटी का प्रमुख केन्द्र हड़प्पा पंजाब के पाकिस्तानी भाग में पड़ता है। यहां से प्राप्त कुछ मोहरें कायोत्सर्ग मुद्रा में प्राप्त होती है। इस सभ्यता का समय ई. पू. 7000 से 5000 ई.पू. वर्ष आंका गया है, जो भगवान पार्श्वनाथ से पहले का है। इतनी बड़ी सभ्यता में किसी भी वैदिक क्रियाकाण्ड से जुड़े धार्मिक स्थल या यज्ञशाला का प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। वस्तुत: यह सभ्यता यहां के मूल द्राविड़ लोगों की सभ्यता थी, जो श्रमण संस्कृति के उपासक थे। यहां से प्राप्त नग्न दिगम्बर प्रतिमा की तुलना लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त मौर्यकालीन प्रतिमा से की जा सकती है। दोनों प्रतिमाओं के आकार में अंतर जरूर है। दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज ने बहुत सी मुद्राओं का अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि कई मुद्राएं भरत-बाहुबली से सम्बन्धित हैं। अनेक वरिष्ठ पुराविद् भी इसी मत के हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त ध्यानस्थ योगी की प्रतिमा का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से श्रमण परम्परा से है। वैदिक धर्म में ध्यान की परम्परा बाद की है।

2. कासन –

हरियाणा के गुड़गांव जिले में पिछले दिनों एक प्राचीन जैन मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस मंदिर के 3 शिखर हैं। बीच में 16 आले हैं, जो संभवत: 16 विद्यादेवियों के स्थान रहे होंगे। यहाँ प्रतिमाएं धातु की हैं, सभी प्रतिमाओं की आयु 1400 वर्ष से 400 वर्ष तक आंकी गई है। मूल प्रतिमा में भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा बहुत ही आकर्षक है। इस मंदिर को अब दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थ का रूप दिया गया है।

3. पिंजौर –

पिंजौर ग्राम हरियाणा के कालका जिले में पड़ता है। अपने मुगल गार्डन के लिए प्रसिद्ध इस स्थल से कुछ दूर बहुत सी विशाल जैन प्रतिमाएं निकली थीं, जो भूरे रंग की हैं। इसका समय 8 वीं सदी जान पड़ता है। प्राचीन साहित्य में इस गांव का नाम पंचपूर था। यह जैन कला का अच्छा केन्द्र रहा है। यहां से प्राप्त प्रतिमा कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में देखी जा सकती हैं। इन में ज्यादा ऋषभदेव, पार्श्वनाथ व महावीर की हैं।

4. अग्रोहा –

अग्रवालों को लोहिताचार्य ने प्रतिबोधित कर दीक्षित किया था। आजकल अग्रोहा की खुदाई में बहुत पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुई है। एक दरवाजे का ऊपरी भाग प्राप्त हुआ है, जो संभवत: किसी मंदिर का भाग रहा हो। उस पर भगवान नेमिनाथजी की सुन्दर प्रतिमा अंकित है। यह मूर्ति आजकल हरियाणा पुरातत्व विभाग चण्डीगढ़ में देखी जा सकती है।

5. थानेश्वर (कुरुक्षेत्र) –

कुरुक्षेत्र या थानेश्वर के स्थल का सम्बन्ध भगवान महावीर से भी रहा है। भगवान महावीर तपस्या काल में धूणाक सन्निवेश पधारे थे। यह स्थल गीता स्थल के नाम से प्रसिद्ध है। यहां एक तीर्थंकर का सिर प्राप्त हुआ है। इस के समय का अंदाजा नहीं लगता, पर यह भूरे पत्थर का है। यह कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में रखा है।

6. अस्थलवोहल –

अगर आपको विशाल खड़ी कायोत्सर्ग श्वेताम्बर प्रतिमाओं का भण्डार देखना हो तो आप देहली - रोहतक रोड़ पर एक नाथ सम्प्रदाय के डेरे में देख सकते हैं। भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं के अतिरिक्त अन्य किसी तीर्थंकर को पहचानना मुश्किल है। यहाँ से 6 कि.मी. पर एक अन्य गाँव में जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं।

7. सिरसा –

यहां के सिकंदराबाद ग्राम व सिरसा से 9 से 11 वीं सदी की बहुत सी जिन प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं।

8. हांसी –

दिगम्बर जैन धातु प्रतिमाओं का विशाल भंडार हांसी से प्राप्त हुआ था। इसके किले में एक इमारत देखने का हमें भी सौभाग्य मिला। उसमें एक जिन मंदिर का प्रारूप भी प्राप्त होता है। हो सकता है, किले में विशाल मंदिर हो और उस की प्रतिमाएं किले में आक्रमणकारियों के भय से छुपा दी गई हों। अब ये प्रतिमाएं दिगम्बर जैन समाज, हांसी के पास हैं। यह प्रतिमाएं परिहार राजाओं के समय की हैं।

9. रानीला –

यह नया दिगम्बर जैन तीर्थ है। रानीला भिवानी के पास पड़ता है। इस गांव में 24 तीर्थंकरों का एक विशाल पट्ट निकला है, जिसके मूल में भगवान ऋषभदेव स्थापित है। चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा भी यहां से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा 8 वीं सदी की है।

10. अम्बाला –

यह हरियाणा का प्रसिद्ध जिला है। यहां श्वेताम्बर मंदिर के जीर्णोद्धार के समय वि.सं. 1155 की भ. नेमिनाथ की, वि.सं. 1454 की भ. वासुपूज्य की व वि.सं. 1455 की पद्मावती पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं प्राप्त हुई थी, जिसे इस मंदिर में स्थापित कर दिया गया है। मंदिर जैन बाजार में स्थित है।

11. नारनौल –

यहां 12 वीं सदी की दो विशाल तीर्थंकरों की प्रतिमाएं भूरे रंग के पत्थर की प्राप्त हुई थी, जिसके पीछे विशाल परिकर है।

12. तोशाम –

यह छोटा सा कस्बा हिसार के पास है। यहाँ 9 - 10वीं सदी की जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं प्राप्त हुई थीं।

13. कांगड़ा –

यह प्राचीन जैन तीर्थ है, जिसका विवरण 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' ग्रन्थ में विस्तृत रूप से आया है। आज भी कांगड़ा के भव्य किले में भगवान ऋषभदेव की प्राचीन प्रतिमा स्थापित है। पास ही अम्बिका देवी का मंदिर है।[9] ऐसा माना जाता है कि पहले यहां भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा थी, जिसके स्थान पर इस प्रतिमा को स्थापित किया गया। इस किले में और भी अनेकों मंदिरों के खण्डहर हैं, जिस पर शोध की आवश्यकता है। इस तीर्थ की खोज का सौभाग्य पंजाब केसरी श्वे. जैन आचार्य श्री विजयवल्लभजी महाराज को है। इस तीर्थ का उद्धार महतरा मृगावती श्री जी ने किया था। कांगड़ा के इन्द्रेश्वर मंदिर में डा. वुल्हर ने भगवान ऋषभदेव की खण्डित प्रतिमा के पत्थर पर एक शिलालेख पढ़ा था। इसी तरह वैजनाथ पपरोला में भी एक प्रतिमा लेख का उल्लेख उन्होंने किया है।[10] इसी के पास ज्वाला जी मंदिर में आज भी एक स्थान पर सिद्धचक्र का गट्टा पड़ा है। आज से 100 वर्ष पूर्व वहां शिलालेख था, जिसे इसी विद्वान ने पढ़ा था। यहीं लुंकड़ यक्ष की पूजा होती है।[11] ज्वालादेवी शासनदेवी रही हैं, हो सकता है, मूलनायक की प्रतिमा वहां रही हो। पर आजकल वहां कोई जिनप्रतिमा नहीं है। इस मंदिर का उल्लेख विज्ञप्ति त्रिवेणी में भी आया है।

14. हस्तिनापुर –

तीन तीर्थंकरों के 12 कल्याणकों की यह पवित्रस्थली है। इसे कौरवों की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। गंगा के किनारे होने से इसे बहुत विनाश झेलना पड़ा है। इसका प्रमाण विस्तृत टीले हैं और उन टीलों पर शेष है - पुरातत्व के चिन्ह। भगवान ऋषभदेव के पारणास्थल के करीबी टीले पर दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य तीनों तीर्थंकरों की चरण पादुकायें स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त गंगा नहर की खुदाई से 7 - 8 वीं सदी के तीर्थंकरों की तीन प्रतिमाएं मिली हैं, जो यहां के 200 वर्ष प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर में विराजमान हैं। इसी मंदिर में भगवान शान्तिनाथ जी की विशाल खड़ी खड़गासन प्रतिमा पारणा स्थल से प्राप्त हुई थी। इस पर एक लेख भी है। यह प्रतिमा 12 वीं सदी की है। हस्तिनापुर में वर्षीतप का पारणा होता है। दोनों सम्प्रदायों के विस्तृत व भव्य मंदिर यहां बने हैं। पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से बना जम्बूद्वीप यहां का भव्य दर्शनीय स्थल है। इसी जम्बूद्वीप परिसर में श्वेत कमल में भगवान महावीर का मन्दिर एवं जम्बूद्वीप पुस्तकालय स्थित है। स्वयं आचार्य जिनप्रभवसूरि ने विविध तीर्थकल्प में इस क्षेत्र के मंदिरों का उल्लेख किया है पर वह मंदिर आज प्राप्त नहीं है। प्रसिद्ध जैन विद्वान एवं समयसार नाटक के रचियता पं. बनारसीदास ने यहां यात्रा की थी, तब भी यहाँ प्राचीन मंदिर विद्यमान थे।

15. कटासराज –

यह क्षेत्र पाकिस्तान के झेलम जिले में पड़ता है। यह पहाड़ी क्षेत्र हिन्दुओं का धर्म स्थान है। कहा जाता है कि इस स्थल पर युधिष्ठर ने यक्ष के प्रश्नों के उत्तर दिए थे। इन्हीं पहाड़ियों में अनेकों स्थलों पर जिन प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं जो किसी जैन मंदिर के अवशेष हैं, ऐसा उल्लेख 'मध्य एशिया व पंजाब में जैन धर्म' नामक ग्रन्थ में पं. हीरालालजी दुग्गड़ ने किया है। इसका प्राचीन नाम सपादलक्ष पर्वत माना जाता है।

16. करेज एमीर (वर्तमान रूस) –

अफगानिस्तान में यह क्षेत्र पड़ता है। यहां एक खंडित चौबीसी प्राप्त हुई है जिस का वर्णन ''जैन कला एवं स्थापत्य - खण्ड 1' ग्रंथ में प्राप्त होता है।

17. दिल्ली –

यह क्षेत्र पुरातत्व से भरा पड़ा है। महरौली में कुव्वते इस्लाम मस्जिद के खम्बे जैन प्रतिमाओं व चिन्हों से भरे पड़े हैं। मस्जिद की गुम्बों की छतों पर तीर्थंकरों के जन्म कल्याणक की प्रतिमाएँ खुदी हैं। पास में प्राचीनता की दृष्टि से खरतरगच्छ के प्रभावक मणिधारी दादा श्री जिनचन्द सूरिश्वर की दादावाड़ी भी है। पूज्य जिनकुशल सूरिजी की दादावाड़ी अब पाकिस्तान (सिंध) में है। दिगम्बर परम्परा के अनेक मन्दिर एवं अवशेष दिल्ली में उपलब्ध हैं।

18. कल्याण –

यह गांव पटियाला से नाभा जाने वाली सड़क पर 5 कि.मी. पर है। यहां इन पंक्तियों के लेखक व पुरातत्व विभाग के कर्मचारी श्री योगीराज शर्मा को कुछ खण्डित प्रतिमाएं मिली, जिन्हें गांव के बाहर दरवाजे पर लोग सिंदूर डालकर भैरों मानकर पूजते थे। कोई प्रतिमा सही सलामत नहीं थी। इन छुकड़ों को विभाग में लाकर साफ किया गया, यह प्रतिमा श्वेताम्बर सम्प्रदाय की हैं। ये अधिकतर भगवान पार्श्वनाथ व भगवान ऋषभदेव की हैं। इनके चिन्ह भी प्रतिमाओं पर अंकित हैं।

19. झज्जर –

हरियाणा के गांव झज्जर से भी एक खण्डित तीर्थंकर की प्रतिमा मिली है।

20. खिजराबाद –

यह गांव रोपड़ जिले में पड़ता है। यहां ब्राह्मी लिपि में अंकित एक जैन तीर्थंकर की प्रतिमा निकली थी, जिसे पुरातत्व विभाग ने भगवान महावीर की प्रतिमा माना है। इसका समय 8 - 9 सदी है।

21. ढोलवाहा –

यह गांव जिला होशियारपुर से 37 मील दूर है। इसका संबंध जैन व हिन्दू - दोनों धर्मों से रहा है। यहां 8 वीं सदी की एक चतुर्मुखी प्रतिमा निकली है, जो आजकल साधु - आश्रम होशियारपुर के म्यूजियम में है।

22. सुनाम –

यह एक प्राचीन नगर है, जिसका सीता माता से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। यहां एक संन्यासी श्री भगवन्त नाथ के डेरे में 7 - 8 वीं सदी की भगवान पार्श्वनाथ की काले रंग की खण्डित प्रतिमा थी, जिसे लेखकों ने स्वयं देखा था। पर कुछ दिनों बाद मंदिर का पुजारी इस प्रतिमा को लेकर भाग गया। उस डेरे में खण्डित प्रतिमा की जगह एक भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा आज भी स्थापित है। उसका समय व स्थापनकर्ता का पता नहीं। अभी कुछ दिन पहले सुनाम के पास लोहाखेड़ा गांव में अनेकों खण्डित प्रतिमाएं निकली। जिनका वर्णन दैनिक पंजाबी ट्रिब्यून में आया। पर अब यह प्रतिमा कहां है पता नहीं चला। इसी प्रकार फरीदकोट से एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा निकलने का समाचार तो आया था। अब वह राजकीय म्यूजियम पटियाला में है।

23. भटिण्डा –

पंजाब के प्रसिद्ध शहर और सबसे बड़े रेलवे जंक्शन भटिण्डा में एक सज्जन श्री हंसराज वांगला के खेत से तीन परिकर युक्त प्रतिमा, एक जिनकल्पी मुनि की प्रतिमा

निकली थी। समाचार पाते ही हम कैमरा लेकर वहां पहुंचे। प्रतिमाओं को साफ किया गया। सफेद संगमरमर की प्रतिमाएं थी, किसी बड़े मंदिर की मूर्तियाँ थी, क्योंकि मूलनायक की इतनी बड़ी प्रतिमा पंजाब में और कहीं भी नहीं मिली। उसका शिलालेख वीर पाव पूरिया से शुरू होता था। हमने उसका अर्थ वीर निर्वाण संवत लगाया है। चिन्हों के आधार पर इसे भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा घोषित किया गया। विशाल प्रतिमा परिकर युक्त सफेद संगमरमर की है। साथ में श्री संभवनाथ भगवान की प्रतिमा प्राप्त हुई है। एक जिनकल्पी मुनि की प्रतिमा तीर्थंकर सादृश्य है पर उसके कंधे पर छोटा सा वस्त्र है। सामने रजोहरण पड़ा है। ये प्रतिमा श्वेताम्बर परम्परा की है। आजकल यह धरोहर पटियाला स्थित सरकारी म्यूजियम मोती बाग में है।

24. मात श्री चक्रेश्वरी तीर्थ –

यह क्षेत्र सरहिंद में पड़ता है। विशाल जंगल में भगवान ऋषभदेव की शासनदेवी चक्रेश्वरी माता स्थापित है। ऐसी किंवदन्ती है कि 8 - 9वीं सदी में कुछ तीर्थयात्री कांगड़ा जा रहे थे, उनके पास यह प्रतिमा थी। यह यात्री खण्डेलवाल जाति के थे, जो मध्यप्रदेश से आए थे। माता के आदेशानुसार ये इसी क्षेत्र में बस गए। माता का मंदिर पिण्डी रूप में स्थापित किया गया, जो आज भी विद्यमान है। आज यह क्षेत्र खण्डेलवालों तक ही सीमित नहीं, बल्कि जैन - अजैन सभी की आस्था का केन्द्र है, सरहिंद युद्धों का क्षेत्र रहा है। बन्दासिंह बहादुर ने यहां की ईंट से ईंट बजा दी थी। युद्ध क्षेत्र में भी माताजी का भवन सुरक्षित है। पास में चमत्कारी जलकुण्ड है, जिस में पानी खत्म नहीं होता, इसे अमृत कुण्ड कहा जाता है।

इस प्रकार प्राचीन पंजाब का पुरातत्व बहुत ही विस्तृत था। हर काल में यहां जैन धर्म किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा। हमने यथा बुद्धि प्राचीन पंजाब के पुरातत्व क्षेत्रों का वर्णन किया है। कई म्यूजियमों में बाहर से लाई जैन प्रतिमाएँ हैं, उनका पंजाब से कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए वर्णन नहीं किया गया।

सदंर्भ स्थल –

1. कणगखल णाम आसम पद दो पंथा उज्जुओ य वंकोप जो सो उज्जुओ सो कणगखल मज्झिण वच्चति वंको परिहरंतो - सामी उज्जुएण पधाइतो - आवश्यकचूर्णि 278. (कणखल आश्रम पद को पहुंचने के दो रास्ते हैं। एक सरल दूसरा लम्बा। दोनों रास्ते कणखल आश्रम (हरिद्वार) जाते थे। प्रभु महावीर ने छोटा रास्ता छोड़ लम्बा रास्ता ग्रहण किया। आज भी यह रास्ता पहाड़ी दुर्गमताओं से भरा पड़ा है।
2. भगवती सूत्र 25 / 33 - 6
3. भगवती सूत्र
4. विपाक सूत्र, अध्ययन - 9, द्वितीय श्रुत स्कन्ध
5. भिखराज महामेघवाहन खारवेल के शिलालेख के अंश
   क. (1) नमो अरहतानं (1) नमो सवसिधानं (1) ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतराजवस - वधनेन पसथ सुभ लखनेन चतुरतल थुन - गुनो पहितेन कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेलेन।
   (2)मंडे च पुव राजनिवेसित - पीथड़ग द (ल) भ - नंगले नेकासयाति जनपद - भावनं च तेरस वस - सत - कुतभद - तितं मरदेह संघातं (1) वारसमे च वसै - सेहि वितासयति उतरापथ राजानो।
6. राजतरंगनी (! - 101, 102, 103) (4 - 202)
7. भागवत, विष्णु, वायु, पद्म आदि सभी पुराणों में भगवान ऋषभ का उल्लेख है।
8. कुमारपाल प्रबोध प्रबन्ध के अनुसार राजा कुमारपाल ने अपने देशों में जैन धर्म को राज्य धर्म घोषित किया। पूर्ण अहिंसा का पालन करवाया। जन हित कार्य मंदिर बनवाये।
   अत्रापि पपादलक्षदानम्। ततः पश्चादागच्छन द्वारिकासन्नं केनापि विक्षप्तः। देवात्र कृष्णराजो वलि – निकन्दनो राज्यमकरीत्। तत्र देवदाये द्वादश ग्रामान वदौ – अयोत्तरा प्रति प्रतस्थे। तत्र काश्मीरोड्डुयान – जालन्धर – सपादलक्ष – पर्वत – खसादि देशानां हिमाचलम्साधयत्।
9. (क) वारह नेमिसर तणए, थपिथ राय सुसरमि। आदिनाह अंबिका, सहिये, कंगड़कोट सिहरमि॥ (नगरकोट

विनती स. 1488)

10. ज्वाला मुखी तीर्थ पर जैन प्रतिमा होने का प्रमाण श्वे. जैन आचार्य श्री जयसागरोपाट्टयाय कृत्चैत्य परिपाटी (समय विक्रम संवत् 1500 के लगभग) में मिलता है।
11. इस नगरकोट षमुकरव ठाणेहि जय जिणभइ वंदिया, ते वीर लउंकड देवी जाल मुखिय मन्नई वंदिया। अर्थात - यह कांगडादि क्षेत्रों में मैंने जिनेश्वरों भगवान की प्रतिमा को नमस्कार करते समय इस क्षेत्र में वीर लकुंड और देवी ज्वालामुखी की मान्यता भी देखी।
12. इन्द्रेश्वर मंदिर से प्राप्त जैन प्रतिमा का शिलालेख पाठ -

(1) ओम् संवत् 30 गच्छे राजकुले सुरि भू च (द) (2) भयचन्द्रः [1] तच्छिष्यो (5) मलचन्द्राख्य [स्त] (3) पदा (दां) भोजषटपदः [2] सिद्दराजस्ततः ढड्ग (4) ढडखगादजनि [ल] ष्यक। रत्नेतिगृहिणी [त] (स्य) या - धर्म - यायिनी। अजनिष्ठां सुतौ (6) [तस्य], [जैन] धर्म ध (प) रायणौ! ज्येष्ठो - कुंड़लको (7) [भ्रा] [त्ता] कनिष्ठः कुमाराभिद्यः। प्रतिमेयं [च] [7 - जिन 1 नुज्ञया कारिता [11] डा वुल्हर ऐपीग्राफी इंडिया।

ओम संवत् 1296 वर्षे फाल्गुन वदि 5 रवौ कीरग्रामे ब्रह्म - क्षत्र गोत्रोपन्न व्यय, भानु पुत्रांभ्यो व्यंव्दोल्हण आलहणाभ्या स्वकारित श्री मन्महावीर जैनचैत्य श्री महावीर जिनबिम्ब आत्म श्रेयों (र्थे) कारितं। प्रतिष्ठितं च श्री जिन वल्लभ सूरि संतानीय रूद्रपल्लीय श्रीमद भयदेव सूरि शिष्य श्री देवभद्र सुरिभि।

(एपीग्राफीया इण्डिया भाग एक पृष्ठ 118 संपादक डा. वुल्हर)

प्राप्त - 22.3.99

अर्हत् वचन पुरस्कार (वर्ष 10 - 1998) की घोषणा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहन देने एवं शोधार्थियों के श्रम को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 1989 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 श्रेष्ठ आलेखों को पुरस्कृत किया जाता है। वर्ष 10 (1998) के 4 अंकों में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन हेतु एक त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल का निम्नवत् गठन किया गया था -

1. **डॉ. एन. पी. जैन,** पूर्व राजदूत, ई - 50, साकेत, इन्दौर
2. **प्रो. सरोजकुमार जैन,** पूर्व प्राचार्य एवं प्राध्यापक - हिन्दी, मनोरम, 37 पत्रकार कालोनी, कनाड़िया रोड, इन्दौर
3. **प्रो. सी. एल. परिहार,** प्राध्यापक - गणित, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर निम्नलिखित आलेखों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। ज्ञातव्य है कि पूज्य मुनिराजों / आर्यिका माताओं, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्यों एवं विगत पाँच वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित लेखकों द्वारा लिखित लेख प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः रुपये 5001/-, 3001/- एवं 2001/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह से निकट भविष्य में सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार - 'नेमिचन्द्राचार्य कृत ग्रन्थों में अक्षर संख्याओं का प्रयोग', 10(2), अप्रैल - 98, पृ. 47 - 59, **श्री दिपक जाधव,** व्याख्याता - गणित, जी - 1, माडल स्कूल कैम्पस, **बड़वानी** - 451551।

द्वितीय पुरस्कार - 'दिगम्बर जैन आगम के बारे में एक चिन्तन', 10(3), जुलाई - 98, पृ. 35 - 45, **प्रो. एम. डी. वसन्तराज,** 66, 9 वाँ क्रास, नवेलु रास्ते, कुवेम्पुनगर, **मैसूर** (कर्नाटक)

तृतीय पुरस्कार - 'Epistemology in the Jaina Aspect of Atomic Hypothesis', 10(3), July - 98, pp 29 - 34, **Dr. Ashok K. Mishra,** Dept. of History, Culture and Archaelogy, Dr. R.M.L. Avadh University, **Faizabad** - 224001

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
सचिव

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 45 - 50

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

झांसी के संग्रहालय में संग्रहीत जैन प्रतिमाएँ

■ सुरेन्द्र कुमार चौरसिया *

उत्तर प्रदेश के दक्षिण पश्चिमी छोर पर स्थित झांसी जिला 24' - 11' और 25' - 50' उत्तरी अज्ञांश तथा 78 - 10, 79 - 25 पूर्वी देशांश के बीच स्थित है।

पहुज तथा वैतवर्ती नदियों के मध्य स्थित झांसी जिले का मुख्यालय झांसी है। इस नगर की स्थापना ओरछा नरेश राजा वीरसिंह देव ने की थी।

यह नगर परकोटे के द्वारा सुरक्षित है। 1613 ई. में निर्मित यहां का किला महत्वपूर्ण है। इस जिले का क्षेत्रफल 5024 वर्ग कि.मी. है।[1]

झाँसी नगर का प्राचीन नाम 'बलवंत' नगर था।[2] कालान्तर में इसे झांसी कहा जाने लगा। मान्यता है कि बुन्देल राजाओं की राजधानी औरछा में स्थित जहांगीर महल से झाँसी के किले की छाया अर्थात् झांइ सी दिखाई देती थी, इसलिए इसे ''झांइसी'' दुर्ग कहा गया, बाद में इस नगर को झांसी कहा जाने लगा।[3]

झाँसी के समीप खैलार, राजापुर, लहर और बड़ागांव में ग्यारहवीं - बारहवीं शताब्दी के कलावशेष प्राप्त हुए हैं। इनके द्वारा सिद्ध होता है कि बलवंतनगर के नाम से झांसी का आधिपत्य मध्यकाल में था।

चेदि महाजनपद के अन्तर्गत स्थित झाँसी नगर और उसके आस - पास का भू - भाग प्राग ऐतिहासिक तथा आद्यऐतिहासिक मानव के निवास का क्षेत्र रहा है।

संग्रहालय परिचय -

झांसी नगर में एक शासकीय संग्रहालय है। इसके अतिरिक्त रानी महल झांसी में आस - पास के क्षेत्रों से एकत्र की गयी कुछ प्रतिमाएं संग्रहीत हैं। रानी महल केन्द्रीय पुरातत्व विभाग का संरक्षित स्मारक है। सन् 1978 में झाँसी का पुरातत्व संग्रहालय संस्कृत विद्यालय के भवन में प्रारंभ हुआ।[4] मार्च 1992 में किले के निकट स्थित महारानी लक्ष्मीबाई पार्क के समीप नवनिर्मित भवन में संग्रहालय स्थानांतरित किया गया। संग्रहालय की स्थापना और व्यवस्था में तत्कालीन संग्रहालयाध्यक्ष डा. एस.डी. त्रिवेदी का योगदान उल्लेखनीय है। वर्तमान संग्रहालय भवन आयाताकार है। भवन में कुल 16 यूनिट हैं। भवन में एक विशाल कक्ष और 6 गैलरी हैं।

राजकीय संग्रहालय में ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध धर्मों से संबंधित देवी - देवताओं, पशु - पक्षियों की कुल 556 पाषाण प्रतिमाऐं हैं। इनके अतिरिक्त 361 मृण्मूर्तियां, 44 कांस्य प्रतिमाएं, 144 पेंटिंग, 61 पाण्डुलिपियां और 8799 मुद्राएं हैं। संग्रहीत मुद्राओं में 41 स्वर्ण, 1019 रजत, 21 मिश्रित धातु तथा 7682 ताम्र मुद्राएं हैं। इनके अतिरिक्त प्राचीन और मध्यकालीन अस्त्र - शस्त्र की संख्या 89 हैं।

संग्रहालय में केवल एक शिलालेख है। इसके अतिरिक्त एरच से प्राप्त दाममित्र अंकित ईट का टुकड़ा भी संग्रहालय में है। विवेच्य क्षेत्र में प्राप्त जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं सीरोन, खुर्द, देवगढ़, जालौन, दुघई, चांदपुर से प्राप्त हुई जिनका संग्रह राजकीय संग्रहालय

* शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर - 470 003 (म.प्र.)

एवं रानी महल में हैं।

संग्रहालय में संग्रहीत जैन प्रतिमाओं का वर्णन –

(1) ऋषभनाथ –

प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की स्थानक प्रतिमा का[5] सुन्दर अंकन है जिनके वक्ष पर स्वास्तिक का अंकन है। इस प्रतिमा की विशिष्टता दर्पण जैसी चमक आज भी विद्यमान होना है। प्रभामण्डल सादा है जिसके दोनों और दो विद्याधर चंवर लिए हुए हैं। गजाभिषेक का अंकन भी दिखाया गया है। निचले हिस्से में दोनों ओर चंवर धारी तथा सेविकाएं बैठी हाथ जोड़े पूजित भाव में दिखाई गयी हैं। प्रतिमा की चरण चौकी के नीचे अभिलेख भी लिखा है जो कि निर्माण की तिथि संवत् 1248, वैशाख सुदी 2 स्पष्ट है। लेख इस प्रकार है -

(क) संवत् 1248 वैशाख सुदि 2 वुदे.....सा

(ख) बुऊल्हा तस्यं मार्या प्रनतासुत सावु.....

(ग) सुत.....नित्यं प्रणमति

12 वीं शती की प्रतिमा चरखारी जिला हमीरपुर से प्राप्त हुई है। (देखें चित्र - 1)

(2) ऋषभनाथ आसनस्थ प्रतिमा –

12 वीं शती की यह प्रतिमा महोबा, जिला हमीरपुर से प्राप्त हुई है। ऋषभनाथ पद्मासन में ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके बाल और कंधे के जोड़ स्पष्ट दिखते हैं। प्रतिमा में कान लम्बे हैं। वक्ष पर श्रीवत्स अंकित है, हथेली और बाजु में कमल चिन्ह का भी अंकन किया गया है। विराजित चौकी पर सुन्दर बेल लताओं का भी अंकन दृष्टिगोचर होता है।[6]

(3) ऋषभनाथ पद्मासन प्रतिमा –

ऋषभनाथ पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ अवस्था में[7], आँखें ध्यान मुद्रा में, कान लम्बवत्, सिर के बाल बंधे हुए घुंघराले हैं। प्रतीक लांछन 'बैल' उनके आधार के मध्य भाग में चिन्हित है। प्रतिमा पर चमकदार पालिश आज भी मौजूद है। प्रतिमा की चरण चौकी के नीचे अभिलेख का अंकन है, जो निम्न है -

'ना वरान्वयैसावुजीज तस्य सुत सैष्ठिघाधै तस्य सुतसवै
सुल्हा नित्यं सजणि प्रणमति। 1228 येष्ठ सुदिं

अनुवाद - सवै सुल्हा जो कि पुत्र है ..... निरन्तर वंदना करता है। प्रथमा शुक्ल पक्ष 1228-।

यह प्रतिमा महोबा से 12 वीं शती के लगभग की प्राप्त हुई है।

(4) चक्रेश्वरी :

द्वार स्तम्भ पर व्यापक रूप से खुर्द दण्ड के दाहिने में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी बाहर निकले हुए गरूड़ पर विराजमान है। उनका एक पैर नीचे की ओर है जो गरूड़ की हथेली पर रखा है। चक्रेश्वरी दसभुजी प्रदर्शित हैं।

उनके दाहिने हाथ में तलवार दूसरे में ढाल है। एक हाथ वरद मुद्रा में। बाएं हाथों में क्रमशः कमलनाल, तीर, चक्र लिए दिखाया गया है। चक्रेश्वरी शंक आकार मुकुट, मैखला, पायल, हार, आदि आभूषणों से सुशोभित हैं। प्रभामण्डल सादा है। विद्याधर हार

लिए ऊपरी हिस्से में दिखाए गये हैं। इस प्रतिमा के बाएं हिस्से में सिर विहीन तीर्थंकर प्रतिमा का अंकन है। तीर्थंकर के बाजु में सहायक हैं। प्रभामण्डल सादा, ऊपर विद्याधर हैं जो हाथों में हार लिए हैं।

चक्रेश्वरी देवी और तीर्थ के मध्य में 2 क्षैतिज कतार हैं जिनके ऊपरी पंक्ति में 4 जिन स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं इनके ऊपर लताओं की पट्टी हैं। निचली पंक्ति में ग्रहों को चित्रित कियां गया है जो बांए हाथ में कलश लिए हैं। दायां हाथ अभयमुद्रा में उठा है। द्वार स्तंभ का यह भाग कला एवं वैशिष्टता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रतिमा सीरोन खुर्द से लगभग 11 वीं शती की प्राप्ति है।[8]

(5) पद्मप्रभनाथ –

यह प्रतिमा छतरपुर मध्यप्रदेश से लगभग 12 वीं शती की प्राप्त हुई है। प्रतिमा स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। उनके हाथ एवं कान लम्बवत् हैं। देव की दाहिने हाथ में कमल लिए दिखाया गया है। सादा प्रभामण्डल युक्त प्रतिमा के दोनों और चँवरचारी पुरुषों का अंकन है। चरण चौकी पर दो पंक्तियों का लेख अंकित है जो अस्पष्ट है। प्रतिमा के प्रभामण्डल का बायाँ भाग, नाक एवं बांयी भुजा की हथेली खण्डित अवस्था में है।[9]

(6) नेमिनाथ –

प्रतिमा स्थानक मुद्रा में है - वक्ष पर श्री वत्स अंकित हैं उनका लांछन मकर और हाथी दोनों और नीचे दृष्टव्य है। प्रभा चक्र के बाएं में विद्याधर का अंकन है। प्रतिमा के ऊपरी भाग को छत्र के रूप में उकेरा गया है। छत्र से एक वृक्ष की पत्ती जुड़ी है जो बौधि वृक्ष को दर्शाती है। कला की दृष्टि से अनुपम कृति है जो मैहर, मध्यप्रदेश से लगभग 12 वीं शती में प्राप्त हुई है।[10] (देखें चित्र - 2)

(7) अम्बिका –

अम्बिका, जो नेमिनाथ की यक्षी हैं, ललितासन मुद्रा में बैठी हैं, प्रभामण्डल सादा है, ऊपरी भाग में आम्रवृक्ष का उत्कीर्णन है, आमवृक्ष के दोनों और विद्याधर भी प्रदर्शित हैं, प्रतिमा के ऊपरी भाग में ही नेमिनाथ की सिर विहीन प्रतिमा का भी अंकन है। अम्बिका सुन्दर हार, स्तनहार, बाजुबंद, कर धन, अधोवस्त्र धारण किए है। अम्बिका की गोद में उनका बड़ा पुत्र शुंभकर बैठा है। अम्बिका के बाएं हाथ के पास उनके छोटे पुत्र प्रभाकर को प्रदर्शित किया है। वेदिका के नीचे सिंह का अंकन है। दाएं भाग में एक दानी बैठा प्रदर्शित है। प्रतिमा मैहर मध्यप्रदेश से लगभग 11 - 12 वीं शती की प्राप्ति है।[11] (देखें चित्र - 3)

(8) पार्श्वनाथ –

स्थानक मुद्रा में लम्बी भुजाएं, हथेली पर कमल चिन्ह, कान लटके हुए लम्बवत्, श्रीवत्स वक्ष पर अंकित है। गले और नाभि के नीचे चार - चार रेखांए पुष्टिदर्शक हैं। सप्तफण वाले प्रभामण्डल से युक्त प्रतिमा के दोनों और चंवरधारी पुरुषाकृति का अंकन है। तीर्थंकर चिन्ह वेदिका के नीचे अंकित है। चरण चौकी पर कुछ अभिलिखित भी है जो -

(क) संवत् 1253 आषाढ़ सुदि 5 रवौनावराश्रये

(ख) साधुजाल्व्ह मगिनीवाल्हा नित्य प्रणमति

यह प्रतिमा हमीरपुर से प्राप्त हुई है।[12] (देखें चित्र - 4)

(9) पार्श्वनाथ –

प्रतिमा के समकक्ष एक सहायक खड़ा है। पांच फण वाला प्रभामण्डल है। दाहिना हाथ व चेहरा क्षतिग्रस्त है। ऊपर नागाकृति के विद्याधर उड़ते हुए प्रदर्शित हैं। ऊपरी भाग पर गजाभिषेक का दृश्य है। सहायक विविध आभूषणों यथा - मेखला, कुण्डल, हार, कमरबंद, कलाई व भुजबंध से युक्त हैं। प्रतिमा का ऊपरी हिस्सा मंदिर आकृति में है। उक्त प्रतिमा महोबा से 12 वीं शती की प्राप्त हुई है।[13]

(10) पार्श्वनाथ –

सप्तफणों वाले प्रभामण्डल से युक्त पार्श्वनाथ प्रतिमा के ऊपरी हिस्से पर दोनों ओर नागाकृति वाले विद्याधर उड़ते हुए दिखाए गए हैं। लम्बवत् हाथ एवं लम्बे कान प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के निचले दोनों और सहायक पुरुषाकृति का अंकन है। चरण चौकी के नीचे सिंहाकृति का प्रदर्शन भी दिखाया गया है। उक्त प्रतिमा सीरोन खुर्द से लगभग 12 वीं शती की प्राप्ति है।[14] (देखें चित्र - 5)

(11) महावीर –

महावीर स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित, वक्ष पर श्रीवत्स, गले और नाभि के नीचे रेखाएं अंकित हैं। भुजाएं लम्बी व हथेली पर पूर्ण कमलाकृति का उत्कीर्णन है। प्रतिमा के दोनों ओर चँवरधारी पुरुषाकृति है। चरण वेदिका पर लेख भी उत्कीर्ण है।

प्रतिमा महोबा से 12 वीं शती में प्राप्त है।[15] (देखें चित्र - 6)

(12) चतुर्कोणीय जिन स्तंभ खण्ड –

संग्रहालय में प्रदर्शित चतुर्कोणीय एक द्वार स्तंभ के चारों और जिन आकृतियों का उत्कीर्णन है। प्रतिमा के ऊपरी हिस्से में कलश आकृति को उकेरा गया है। कान एवं हाथ लम्बवत् हैं। देव चरण चौकी के निचले हिस्से पर सिंहाकृति का उत्कीर्णन भी प्रदर्शित है। (देखें चित्र - 7)

सन्दर्भ –

1. मनोरमा ईयर बुक, 1990, कोट्टयम, पृ. 553
2. झांसी जिला गजेटियर, पृ. 344, उत्तम चरित्र, 82 - 162
3. झांसी जिला गजेटियर, पृ. 1
4. राजकीय संग्रहालय, झांसी, परिचय पुस्तिका, श्रीवास, ओ.पी.एल. पृ. 1
5. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 79 - 49
6. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा
7. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80 - 13
8. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 25
9. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 8
10. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 9
11. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 28
12. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 18
13. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 23
14. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 24
15. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या, 80, 17

प्राप्त – 1.9.98

(चित्र – 1) भगवान ऋषभदेव

(चित्र – 2) भगवान नेमिनाथ

(चित्र – 3) भगवान अंबिका

(चित्र – 4) भगवान पार्श्वनाथ

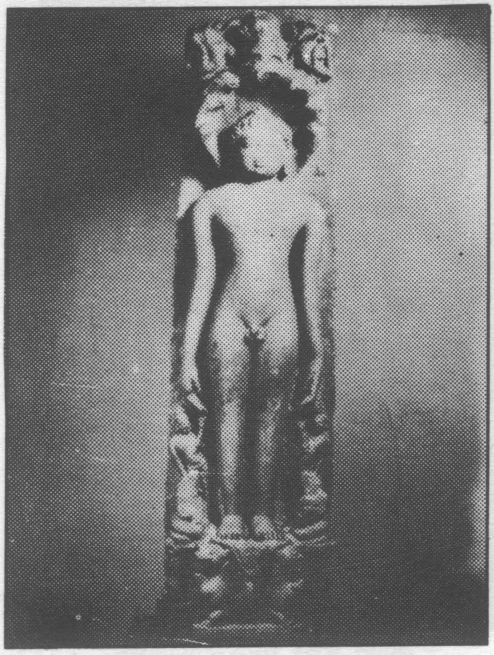

(चित्र – 5) भगवान पार्श्वनाथ

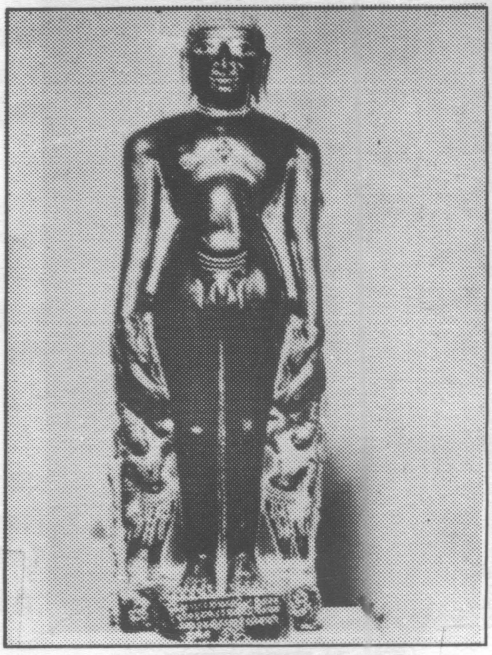

(चित्र – 6) भगवान महावीर

(चित्र – 7) जिन स्तम्भ खंड

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 51 - 57

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) और उनकी साधना स्थली
विशाला (बद्रीनाथ)

■ गुलाबचन्द जैन *

कालचक्र के तृतीय खण्ड सुषमा - दुषमा की समाप्ति के चौरासी लाख वर्ष पूर्व (जिनागम में 'पूर्व' का परिणाम 70 लाख 56 हजार कोटि वर्ष निर्धारित है) के साढ़े आठ माह शेष रहने पर विनीता नगरी (वर्तमान अयोध्या) के शासक, अन्तिम कुलकर, इक्ष्वाकुवंशी महाराज नाभिराय के यहाँ उत्तराषाढ़ नक्षत्र की चैत्र कृष्ण नवमी की प्रभात वेला में जैन धर्म के आदि प्रवर्तक, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ था। महारानी मरुदेवी उनकी जननी थीं। श्री ऋषभदेव जन्म से ही अप्रतिम बौद्धिक शक्ति एवं प्रतिभा सम्पन्न थे। बीस लाख वर्ष पूर्व की आयु में इनका विवाह कच्छ एवं सुकच्छ देश की दो सुलक्षणा, सुन्दर कन्याओं नंदा (यशस्वती) व सुनंदा से हुआ था।[1] श्री ऋषभदेव की प्रथम पत्नी नंदा से भरत आदि 99 पुत्र तथा एक पुत्री ब्राह्मी और दूसरी पत्नी सुनन्दा से एक पुत्र बाहुबली तथा एक पुत्री सुन्दरी का जन्म हुआ था। श्री ऋषभदेव के वयस्क हो जाने पर उन्हें सम्पूर्ण राज्य भार सौपकर महाराजा नाभिराय आत्म चिंतन एवं धर्माराधन पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

श्री ऋषभदेव के पूर्व यह क्षेत्र भोगभूमि था। जनता को जीवनोपयोगी सभी पदार्थ बिना कोई श्रम किये, कल्पवृक्षों द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाते थे। किन्तु काल के प्रभाव से क्रमश: कम होते हुए कल्पवृक्षों का अभाव हो गया। अब सभी के समक्ष जीवनोपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति का प्रश्न उपस्थित था। महाराज ऋषभदेव ने जनता के कष्टों का अनुभव करते हुए उन्हें श्रमपूर्वक कृषि कर्म, कृषि हेतु आवश्यक वस्तुओं के निर्माण, पशु पालन, जिससे दूध, घी आदि खाद्य के साथ - साथ कृषि हेतु उपयोगी पशु - वृषभ प्राप्त हो सके, वस्त्र निर्माण तथा वाणिज्य - व्यवसाय आदि की शिक्षा दी ताकि सभी श्रमपूर्वक सुखी जीवन निर्वाह कर सकें। इस प्रकार भोगभूमि समाप्त होकर कर्म भूमि का प्रारम्भ हुआ। नागरिकों के साथ - साथ उन्होंने अपने पुत्रों को भी विभिन्न विद्याओं - मल्ल विद्या, अस्त्र - शस्त्र चालन, गायन - वादन, शिल्प एवं चिकित्सा आदि में निपुणता प्रदान की। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को भी अक्षर एवं अंक विद्या की शिक्षा दी। पुत्री ब्राह्मी के नाम पर ही ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ जिसे बाद में संस्कृत आदि भाषाओं की जननी होने का गौरव प्राप्त हुआ।

अत: सभी प्रकार से संतुष्ट एवं सुखी नागरिकों के साथ महाराज ऋषभदेव निर्विघ्न एवं सानंद राज्य करने लगे। एक दिन राज दरबार में राजनर्तकी नीलांजना का नृत्य चल रहा था। नृत्यावस्था में ही अकस्मात आयु समाप्त हो जाने कारण नर्तकी की मृत्यु हो गई। वहाँ उपस्थित इन्द्र ने चतुरतापूर्वक स्थिति को संभालते हुए तत्काल ही नीलांजना के स्थान पर किसी अन्य नर्तकी को स्थापित कर दिया। नृत्य चलता रहा किन्तु नर्तकी बदल गई। सभासदों को इस दुर्घटना एवं परिवर्तन की भनक भी न पड़ी किन्तु अवधिज्ञानी ऋषभदेव से यह घटना छिपी न रह सकी। इस घटना का उनके मन पर गंभीर प्रभाव पड़ा तथा जीवन की नश्वरता का बोध होकर उनके मन में वैराग्य की अजस्र धारा प्रवाहित

* राजकमल स्टोर्स, सावरकर पथ, विदिशा - 464 001

होने लगी। नृत्य चल रहा था किन्तु ऋषभदेव के मानस पटल पर भोगों का भव-रोगवर्द्धक स्वरूप चलचित्र की भांति स्पष्टत: परिलक्षित हो रहा था। वे देख रहे थे कि इस अमूल्य जीवन का एक वृहत् भाग तो मैंने सांसारिक भोगों के क्षणिक एवं नश्वर सुखों की लालसा में व्यर्थ ही गंवा दिया। अब आत्म कल्याण एवं सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय करना चाहिये। जीवन अनित्य है, मृत्यु निश्चित है, जीवन-मृत्यु का यह चक्र तो निरन्तर चलता ही रहेगा। कुछ ऐसा करना चाहिये जिससे इस भव चक्र से सदा के लिये मुक्ति प्राप्त की जा सके। यह मानव जीवन पुन: धारण न करना पड़े।

विचारों में सांसारिक भोगोपभोगों के प्रति तीव्र विरक्ति उत्पन्न होते ही लौकांतिक देवों ने वहाँ आकर श्री ऋषभदेव के आत्म कल्याणकारी विचारों की अनुमोदना की तथा निवेदन किया - 'हे देव! आप तो धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हैं, अत: कर्म शत्रुओं का क्षय कर श्रेष्ठ मोक्षमार्ग प्रकाशित करें।' श्री ऋषभदेव ने आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर होने का दृढ़ निश्चय कर समस्त राज्य का अपने पुत्रों में बंटवारा कर दिया। भरत को अयोध्या, बाहुबली को पोदनपुर तथा शेष 99 पुत्रों को विभिन्न राज्यों का स्वामित्व प्राप्त हुआ। अब सर्व प्रकार निराभार हो उन्होंने तपश्चरण हेतु वनागमन का निश्चय किया। अत: सुदर्शना नामक पालकी पर आरूढ़ हो, नगर के बाह्य भाग में स्थित सिद्धार्थक वन की ओर उन्होंने प्रस्थान किया। उस समय भगवान का तपकल्याणक उत्सव देखने के लिये महाराज नाभिराय, माता मरुदेवी, हजारों राजा तथा समस्त पुरवासी पालकी के पीछे-पीछे चल रहे थे। वन में पहुँच श्री ऋषभदेव ने माता-पिता तथा समस्त परिवारजनों से अनुमति ली एवं वस्त्राभूषण आदि समस्त बाह्य परिग्रह का परित्याग कर पूर्ण दिगम्बर हो, पंचमुष्टि केशलंचुन कर, **ॐ नम: सिद्धेभ्य:** उच्चारण करते हुए सिद्धों की वन्दना की तथा वट वृक्ष के नीचे एक शिला पर बैठ ध्यानस्थ हो गये। जिस स्थान पर श्री ऋषभदेव ने दीक्षा ली थी वही स्थल बाद में प्रयाग, वर्तमान में इलाहाबाद नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अट्ठाइस मूलगुणों का सम्यक पालन करते हुए मुनि ऋषभदेव ने छह माह तक निराहार रहकर अनशन तप की आराधना की। बाद में विहार करते हुए वे हस्तिनापुर पहुँचे, जहाँ बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ राज करते थे। सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांसकुमार द्वारा इक्षुरस के रूप में दिये गये आहार से महामुनि ने पारणा की। यह पावन दिवस लोक में आज भी **अक्षय तृतीया** के नाम से जाना जाता है।

एक हजार वर्षों की मौन साधना के पश्चात उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई एवं मुनि श्री ऋषभदेव शुद्ध, बुद्ध, पूर्ण वीतरागी, अर्हत् परमेष्ठी भगवान बन गये। अष्टापद गिरिमाला पर उनका समवशरण आयोजित हुआ। भूमि से चार अंगुल ऊपर कमलासन पर भगवान विराजमान हुए।[2] भगवान ऋषभनाथ की वाणी मुखरित हुई। वृषभसेन उनके प्रमुख प्रस्तोता-गणधर बने। वहाँ उपस्थित सभी भव्य जीवों ने उनका आत्म हितकारी एवं मुक्ति पथ प्रदर्शक दिव्य उपदेश ग्रहण किया। भगवान की कल्याणमयी अमृत वाणी श्रवण करने महाराज भरत भी सपरिवार पधारे। स्वसमय एवं परसमय रूप अनादि तत्व का निरूपण करते हुए भगवान ने कहा 'जो समय बीत गया वह लौटकर नहीं आता। मोह-माया में लिप्त जीव सम्यक पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अत: सभी सम्यक पुरुषार्थ करते हुए, कषायों से विरत हो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें।'[3]

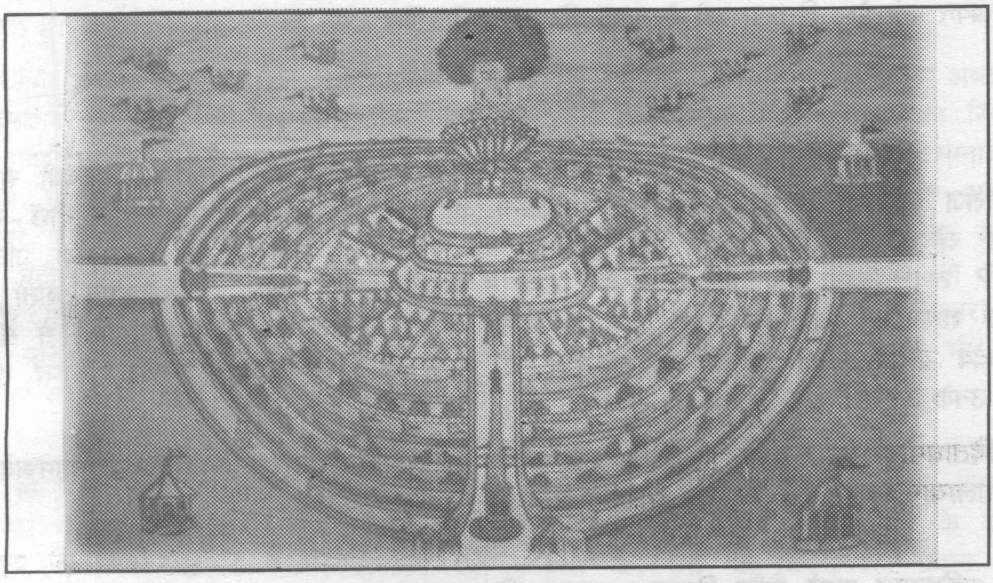

समवसरण का चित्र

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात भगवान ऋषभदेव का लोकोपकारी धर्मचक्र प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ। एक सहस्र कम एक लाख वर्ष पूर्व वर्षों तक काशी, कुरु, कौशल, चेदि, अंग, बंग, मगध, आंध्र, कलिंग, पांचाल, अवंति, मालव, दशार्ण, विदर्भ आदि देशों में विहार करते हुए भगवान ऋषभदेव ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया तथा अष्टापद के विशाला (बद्रीनाथ) आदि शिखरों पर तपश्चरण करते हुए आयु के चौदह दिवस शेष रहने पर वे कैलाश गिरि शिखर पहुँचे। कैलाश गिरि शिखर पर ध्यानस्थ हो, योग निरोधपूर्वक शेष अघातिया कर्मों का क्षय कर माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातः सूर्योदय बेला में ऋषभदेव ने मोक्ष प्राप्त किया। भगवान के साथ-साथ एक हजार मुनियों ने भी मुक्ति प्राप्त की। भगवान के निर्वाण के पश्चात वृषभसेन आदि गणधर, बाहुबली, भरत, तीर्थंकर अजितनाथ के पितामह महाराज त्रिदशंजय, व्याल, महाव्याल, अच्छेद, अभेद्य, नागकुमार आदि अनेक भव्य जीव भी अष्टापद के इन्हीं पावन गिरि शिखरों से मुक्त हुए।

हिमगिरि - हिमालय को भरत क्षेत्र में एक विशेष गौरव प्राप्त है। विविध तीर्थ कल्प के अष्टापद गिरिकल्प में गौरीशंकर, द्रोणगिरि, नन्दादेवी, नर, नारायण, त्रिशुली, विशाला तथा कैलाश - इन सभी गिरि शिखरों को अष्टापद में गर्भित किया गया है। संस्कृत निर्वाण काण्ड के अनुसार - **'सहयाचले च हिमवति सुप्रतिष्ठे'**[4] - समस्त हिमालय ही सिद्धक्षेत्र है। हिमालय का प्राकृतिक वैभव, शांत एकांत विराट स्वरूप तथा तपोलीन मुनियों की भांति स्थिर खड़े ऊँचे-ऊँचे गिरि शिखर हृदय की आध्यात्मिक भावनाओं को उद्वेलित कर उसे आत्म चिंतन एवं आत्म साधना हेतु प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि आत्म साधना हेतु सभी तीर्थंकरों एवं मुनिवरों ने सदैव इन्हीं गिरि शिखरों का आश्रय लिया है। पूर्व में स्थित सम्मेदशिखर से प्रारम्भ कर पश्चिम में गिरनार तक सभी गिरि शिखर इन महान आत्माओं की चरण रज से पावन हैं, निर्वाण प्राप्ति के साधन हैं। यदि कैलाश शिखर तीर्थंकर आदिनाथ का या गिरनार तीर्थंकर नेमिनाथ का मुक्ति धाम है तो सम्मेदशिखर को सर्वाधिक बीस तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि होने का गौरव प्राप्त है। महाकवि कालिदास ने

अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ 'कुमारसंभव' में **'आस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:'**[5] लिखकर पर्वतश्रेष्ठ हिमालय को देवताओं की आत्मा निरूपित किया है।

मरुदेव्यासहैर्नाभि: राजोराजातैर्वत:,
अनुस्तिस्थौ तदादृष्टुम् विभोर्निष्क्रमणोत्सवम्॥[6]

अर्थात् भगवान का दीक्षा कल्याणक महोत्सव देखने के लिये महारानी मरुदेवी सहित महाराज नाभिराय सैकड़ों राजाओं और पुरजनों के साथ ऋषभदेव की पालकी के पीछे-पीछे चल रहे थे।[7] इसके पश्चात श्री नाभिराय के जीवन के उत्तरार्द्ध, वे कब तक जीवित रहे? तथा अपना शेष जीवन उन्होंने कहाँ व किस प्रकार व्यतीत किया? इन बातों की चर्चा शास्त्रों में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। किन्तु हिन्दू धर्मग्रंथ श्रीमद्भागवत में महर्षि शुकदेव द्वारा प्रस्तुत विवरण से नाभिराय के संबंध में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। उनके अनुसार -

'विदिताधर्मानुरागमापौरप्रकृति जनपदी राजानाभिरात्यजम् समय सेतुरक्षायामाभिषिच्य सहमरूदेव्या विशालायाम् प्रसन्नचित्तेननिपुणेन तपसा समाधियोगेन् .....महिमानवाप्त।'[8]

उपरोक्त कथन की टीका करते हुए श्रीधरस्वामी लिखते हैं - 'पुरवासियों की प्रकृति को अभिव्याप्त करने वाला जिनका अनुराग प्रसिद्ध था तथा जो जन-जन के परम आदरणीय एवं श्रद्धा के पात्र थे, ऐसे महाराज नाभिराय ने धर्म मर्यादा की रक्षा के लिये अपने पुत्र ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर स्वयं विशाला बदरिकाश्रम में प्रसन्न मन से परम आदरणीय उत्कृष्ट तप तपते हुए यथाकाल महिमापूर्ण जीवन मुक्ति निर्वाण प्राप्त किया।' श्रीमद्भागवत के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज नाभिराय ने अपने जीवन के अंतिम समय में विशाला बद्रीनाथ गिरि शिखर पर तपश्चरण करते हुए यहीं से मुक्ति प्राप्त की थी।

पर्वतीय अंचल प्रारम्भिक अवस्था में हरे-भरे, विशाल एवं सघन वृक्षों से आच्छादित रहते हैं किन्तु जैसे जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है, ऊँचे घने वृक्ष विरल होते जाते हैं तथा उनका स्थान छोटी-छोटी झाड़ियाँ लेने लगती हैं। समुद्रतल से दस ग्यारह हजार फुट ऊँचे बद्रीनाथ शिखर की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। यहाँ सर्वत्र बदरी-बेर की छोटी छोटी झाड़ियाँ ही दिखाई देती हैं। यहाँ का स्वच्छ, सुरम्य एवं शांत वातावरण तपस्या एवं आत्म साधना हेतु अनुकूल, एक आश्रमवत प्रतीत होता है। तथा यही परिदृश्य इस गिरि शिखर के बदरिकाश्रम बद्रीनाथ नाम को सार्थकता प्रदान करता है।

बद्रीनाथ मन्दिर के पीछे कुछ दूरी पर नर, नारायण एवं नीलकंठ गिरि श्रृंगों के मध्य एक विशाल प्रस्तर शिला पर चरणों की अनुकृति उत्कीर्णित है। स्थानीय जनता इसे धर्मशिला कहकर आदर प्रदान कर रही है। महाराज नाभिराय की तप एवं निर्वाण भूमि होने के कारण विशाला-बद्रीनाथ शिखर पर निर्मित यह चरण नि:सन्देह नाभिराय के ही चरण हैं। महामानवों के निर्वाण के पश्चात उनके चरण निर्माण करने का प्रचलन जैन समाज में विशेष रूप में अति प्राचीन काल से ही प्रचलित है। तीर्थंकरों एवं महामुनियों की निर्वाणभूमि पर उनकी प्रतिमा स्थापित न कर उनके चरण ही प्रतिष्ठित किये जाते रहे हैं। श्री सम्मेदशिखर एवं गिरनार आदि शिखरों पर भी वहाँ से मुक्त हुए भगवंतों के चरण ही विराजमान हैं। साथ ही कैलाश गिरि की ओर विहार करते समय मुनि ऋषभदेव द्वारा यहाँ किया गया

तपश्चरण एवं समवसरण का आयोजन भी बद्रीनाथ गिरि शिखर की पावनता को प्रदर्शित करता है।

भगवान ऋषभदेव के निर्वाण के पश्चात उनकी स्मृति में महाराज भरत ने अष्टापद (हिमालय के आठ गिरि शिखरों) पर अनेक जिनालयों, जिन प्रतिमाओं एवं स्तूपों का निर्माण करवाया था। काल के प्रभाव से इनका पूर्णतया विनाश हो जाने पर भी इनके भग्नावशेष आज भी यत्र-तत्र दिख जाते हैं। बद्रीनाथ स्थित गरुड़कुंड में जैन प्रतिमाओं के अवशेष बिखरे पड़े हैं। नागनाथ पोखरी में भी जैन मंदिरों के कुंछ भग्न खंड देखे जा सकते हैं। बद्रीनाथ से कुछ दूर भारत-तिब्बत सीमा पर स्थित एक ग्राम - माणागांव का माता मंदिर माता मरुदेवी का ही मन्दिर है जहाँ तपश्चरण करते हुए उन्होंने अपनी नश्वर देह का परित्याग किया था। ऋषिकेश-बद्रीनाथ मार्ग के मध्य श्रीनगर में तो आज भी एक शिखर संयुक्त विशाल प्राचीन जिनालय विद्यमान है।

बद्रीनाथ मंदिर की मूल प्रतिमा पद्मासन एवं ध्यानमुद्रा में निर्मित भगवान ऋषभदेव की ही प्रतिमा है। प्रातःकाल अभिषेक के समय, विशेष शुल्क देकर प्रतिमा को उसके दिगम्बर स्वरूप में दर्शन किया जा सकता है। प्रतिमा के दो ही हाथ हैं। बाद में जनता के दर्शन के काल में दो अतिरिक्त हाथ लगाकर एवं श्रृंगारित कर इसे चतुर्भुज स्वरूप प्रदान कर दिया जाता है।

मूलतः यह प्रतिमा किसकी है? इस संबंध में अनेक मनीषियों ने समय-समय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' मासिक के विशेषांक 'तीर्थांक'[9] के सम्पादकीय के अनुसार 'बद्रीनाथ की यह प्रतिमा मूलतः यहाँ की नहीं है। इसे कैलाश (भगवान ऋषभदेव की निर्वाणस्थली)[10] के समीपस्थ आदि बदरी के थूलिंग मठ से लाकर यहाँ स्थापित किया गया था।' पूर्व में इस क्षेत्र पर बौद्धों का अधिकार था और वे इस प्रतिमा को भगवान बुद्ध की प्रतिमा मानकर इसका पूजन अर्चनन करते थे। बाद में यह ज्ञात होने पर कि यह बुद्ध मूर्ति नहीं है, उन्होंने इसे समीप ही प्रवाहमान अलकनंदा नदी में फेंक दिया था। पश्चात् श्री शंकराचार्य ने प्रतिमा को निकलवाकर इसे यहाँ विधिवत प्रतिस्थापित किया था। 'बद्रीनाथ यात्रा' शीर्षक लेख में केदारनाथ शास्त्री स्वीकार करते हैं कि 'बद्रीनाथ की प्रतिमा स्थानीय गरुड़कुंड से ही प्राप्त हुई प्रतिमा है।' कुछ सनातन धर्मावलम्बी पंडितों ने इस प्रतिमा के मूल स्वरूप को देखकर इसे प्रणाम तक नहीं किया है। जैन समाज बद्रीनाथ की इस प्रतिमा को भगवान ऋषभदेव की तथा हिन्दू इसे विष्णु की मूर्ति मानते हैं। भव्य एवं सौम्य मुखमुद्रा वाली यह प्रतिमा जैन एवं वैष्णव सभी की आस्था एवं धार्मिक सद्भावना की प्रतीक है। सच तो यह है कि अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न इस देवमूर्ति में सभी धर्मावलम्बियों को अपने-अपने इष्ट देवता का दर्शन होता है। बद्रीनाथ मन्दिर में भगवत आराधना के समय नित्य पढ़े जाने वाले इस श्लोक से भी यही भावना प्रस्फुटित होती है —

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वैदांतिकाः।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्त्रेति नैयायिकाः॥
अर्हन्नित्यमसौ जिनशासन रताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं माम विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्य नाथो प्रमुः॥

जैनागम में भी राम-कृष्ण आदि को भविष्य में मोक्षगामी स्वीकार करते हुए उन्हें

श्रेष्ठ पुरुष - पुरुषोत्तम मानकर आदर प्रदान किया है। आचार्य मानतुंग ने तो हरि-हर आदि के सद्गुणों के अनुरूप उनमें अपने इष्ट की कल्पना तक की है। उनके द्वारा रचित काव्य 'भक्तामर स्तोत्र' के 25 वें श्लोक में भक्ति के प्रवाह में वे कहते हैं -

बुद्धस्त्व मेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रय शंकरत्वात्,
धातासि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन पुरुषोत्तमोसि।[11]

'हे भगवन! अपूर्व बुद्धिबोध के कारण आप ही बुद्ध हैं, समस्त विश्व कल्याणकर्ता होने के कारण आप ही शंकर हैं, मोक्षमार्ग के आदि प्रवर्तक होने के कारण आप ही प्रजापति ब्रह्मा हैं तथा मानवों में श्रेष्ठ होने के कारण आप ही पुरुषोत्तम विष्णु हैं।'

हिमालय - हिमगिरि पर विहार करते समय परम पूज्य दिगम्बर जैन संत मुनि श्री विद्यानन्दजी ने सन् सत्तर के दशक में बदरिकाश्रम की यात्रा की थी। बद्रीनाथ मन्दिर के प्रधान श्री रावल के साथ घृतदीप के प्रकाश में, अभिषेक के काल में, बद्रीनाथ कही जाने वाली इस प्रतिमा का सूक्ष्म दृष्टि से दर्शन करने पर उन्हें भी इस प्रतिमा में पूर्ण वीतराग मुद्रा युक्त जिन प्रतिमा का ही दर्शन हुआ था।

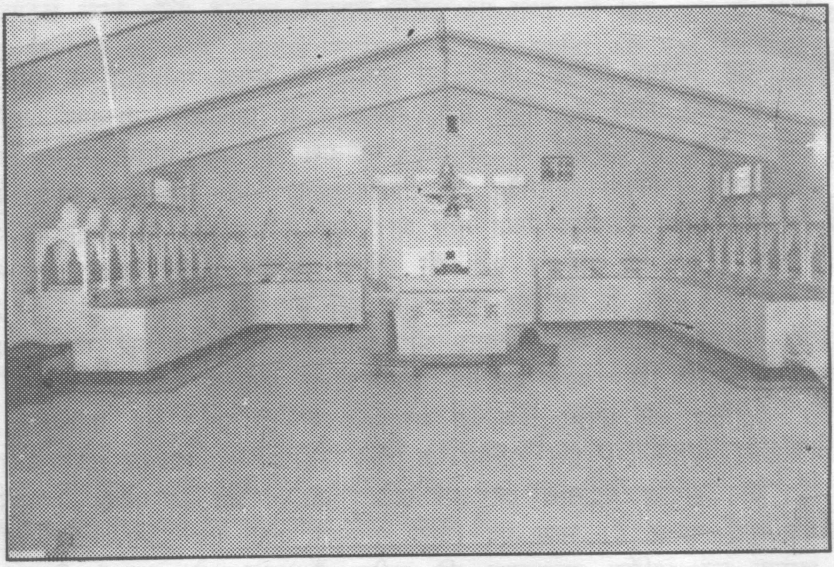

नवनिर्मित जैन सभागार का दृश्य

देहली - सहारनपुर रेल मार्ग पर हरिद्वार रेलवे स्टेशन से तीन सौ किलोमीटर दूर स्थित बद्रीनाथ के लिये मोटर मार्ग है। हरिद्वार से बसें ऋषिकेश, देवप्रयाग, श्रीनगर, जोशीमठ, गोविन्दघाट होते हुए बद्रीनाथ मंदिर के समीप तक जाती हैं। बद्रीनाथ में यात्रियों के विश्राम हेतु धर्मशालायें एवं शासकीय गेस्ट हाउस हैं। एक जैन धर्मशाला का निर्माण भी हो चुका है। यहीं एक भवन में नवनिर्मित चौबीस वेदियों पर चौबीस तीर्थंकरों के चरण भी स्थापित किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र की उन्नति हेतु 'आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन' विशेष प्रयत्नशील है। इसके इन्दौर कार्यालय का पता है - 50, सीतलामाता बाजार, इन्दौर - 452 001

(म.प्र.)। सभी को एक बार इस स्थल पर अवश्य जाना चाहिये।

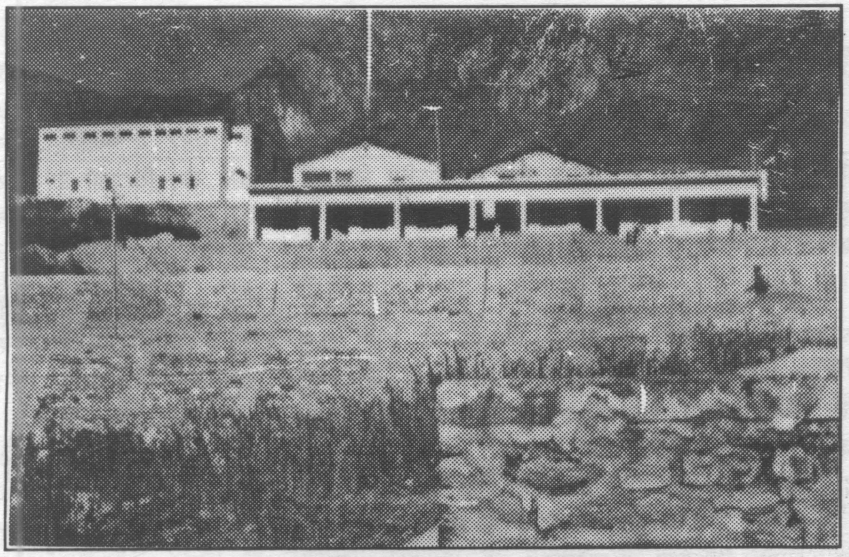

पुराने अतिथिग्रह एवं नवनिर्माण एकसाथ

सन्दर्भ ग्रन्थ —

1. महापुराण, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
2. भगवान ऋषभदेव, पं. कैलाशचन्द शास्त्री
3. आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पं. बलभद्र जैन
4. हिमालय में दिगम्बर जैन मुनि, श्रीपाल जैन 5. सूत्रकृतांग, श्वेताम्बर जैन परम्परा में मान्य 11 अंगों में से द्वितीय अंग

सन्दर्भ स्थल –

1. आदिपुराण, जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
2. वही
3. सूत्रकृतांग, गाथा 12 - 13
4. निर्वाण कांड, संस्कृत
5. कालिदास, कुमार संभव
6. आचार्य जिनसेन, महापुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
7. हरिवंश पुराण एवं पद्म पुराण,
8. श्रीमद् भागवत,
9. कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर, तीर्थांक, **31** (1),
10. प्राचीन जैन ग्रन्थों में भगवान आदिनाथ की निर्वाण भूमि के रूप में अष्टापद कैलाश का उल्लेख है। बद्रीनाथ में निर्मित जैन धर्मशाला, गेस्ट हाउस एवं आराधना स्थल निर्मित है। यहाँ स्थापित भगवान के प्राचीन चरणचिन्ह निर्वाण भूमि के प्रतीक स्वरूप हैं। इस पर्वतमाला में वास्तविक निर्वाण स्थल स्थित है, किन्तु स्थल की सही पहचान लगभग असंभव है, अत: प्रतीक स्वरूप बद्रीनाथ में निर्वाणस्थली बनाई गई है। इसी स्थल पर निर्वाण भूमि होने का दावा नहीं है।
11. भक्तामर स्तोत्र, आचार्य मानतुंग, ज्ञानपीठ पूजांजलि, दिल्ली

प्राप्त – 8.10.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं विशेषत: जैन विद्याओं के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धत्ति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ/शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इस क्रम में हमने ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, **ब्यावर** एवं **उज्जैन** तथा **इन्दौर** के कतिपय शास्त्र भंडारों के सूची-पत्र प्राप्त कर कार्ड बनवा लिये हैं। इसी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के माध्यम से हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर हो वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उनकी छाया प्रतियों/माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 मार्च 1999 तक पुस्तकालय में 6400 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं 1000 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। समस्त पुस्तकों के ग्रन्थानुक्रम से इन्डेक्स कार्ड भी बनाये जा चुके हैं। पुस्तकालय के कम्प्यूटरीकरण का कार्य भी प्रगति पर है। हमारे पुस्तकालय में लगभग अनेकों पत्र-पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1-1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।
2. अपने शास्त्र भंडार में संग्रहीत अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची प्रेषित करने का कष्ट करें।

लेखकों से : 3. अपनी कृतियों (पुस्तकों/लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।
4. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रंथालय में प्राप्त होने वाली कृतियों को प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.3.99

वर्ष - 11, अंक - 2, अप्रैल 99, 59 - 61

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

बलात् धर्म परिवर्तन के स्मारक - सराक

■ रामजीत जैन *

भारत के तीन राज्य पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा सराक क्षेत्र के नाम से जाने जाते हैं। यहां कौन शाकाहारी है? इसके उत्तर में सबसे पहिले सराकों का नाम आता है। गांव में उनका स्थान श्रेष्ठ माना जाता है, लोग इन्हें भद्र कहते हैं। वे न तो किसी से लड़ाई करते हैं, न झगड़ा, न विवाद।

कोई समय था जब इन प्रदेशों में **'णमो अरिहंताणं'** और **'चत्तारि मंगलम्'** का निर्घोष गूंजता रहा था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और महावीर पूर्वी भारत में उत्पन्न हुए थे, उन्होंने निरन्तर विहार करके अपने दिव्य उपदेशों और प्रवचनों से वहाँ के जन-जन को सद्धर्म की आस्था दी, दीक्षा दी और संस्कार दिये। इन प्रदेशों का आकाश जैन धर्म और जैन तीर्थङ्करों के जय-घोषों से गुंजरित होता रहा। कालान्तर में इन प्रदेशों के पालवंशी राजाओं के धार्मिक उन्माद और अन्य ऐतिहासिक कारणों से बाध्य होकर यहाँ के जनमानस को जैन धर्म त्यागकर हिन्दू धर्म अपनाना पड़ा। इन प्रदेशों मे बिखरे हुए सराक, रंगिया, गोप आदि इसी बलात् धर्म परिवर्तन के स्मारक हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गई लेकिन फिर भी उनमें जैन संस्कार विद्यमान हैं। इन प्रदेशों में अब तक विध्वस्त जैन मंदिर और मूर्तियाँ मौजूद हैं।

सरहिया, सेहरिया, सरड़िया, सौहार बाल, सिराग यह सब नाम एक ही जाति के द्योतक हैं केवल नाम भेद प्रतीत होता है। प्राचीन जैन स्मारक (बंगाल, बिहार, उड़ीसा) में लिखा है कि पटना के मानभूमि जिले में एक खास तरह के लोग रहते हैं जिनको सराक कहते हैं। वह मूल में जैनी हैं।[1] भगवान महावीर का विहार भी यहाँ होना बताया है। लेकिन विशिष्ट बात यह है कि भगवान पार्श्वनाथ का सर्वसाधारण पर यहाँ इतना प्रभाव पड़ा है कि आज भी बंगाल, उड़ीसा में फैले लाखों सराकों, बंगाल के मेदिनीपुर जिले के सद्गोपों, उड़ीसा के रंगिया जाति के लोगों के जीवन व्यवहार में यह देखने को मिलता है। यद्यपि भगवान पार्श्वनाथ को लगभग पौने तीन हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और ये जातियाँ किन्हीं बाध्य कारणों से जैन धर्म का लगभग परित्याग कर चुकी हैं, किन्तु आज भी ये जातियाँ पार्श्वनाथ को अपना आद्य कुल देवता मानती हैं। इन जातियों ने अपने आराध्य पार्श्वनाथ के प्रति अपने हृदय की श्रद्धा और आभार प्रकट करने के लिये सम्मेदशिखर का नाम पार्श्वनाथ हिल रख दिया है और अब यही नाम प्रचलित हो गया है।[2]

'सराक' शब्द जैन धर्म में मान्य 'श्रावक' शब्द का अपभ्रंश है। जैन धर्म में श्रावक शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन है। महावीर के अनुयायी गृहस्थ 'श्रावक' कहलाते थे। अभी जैन धर्म में यह शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है। राजस्थान में जो 'सरावगी' शब्द चलता है, वह भी श्रावक का ही रूपान्तर है। सराक और सरावगी दोनों ही अहिंसक संस्कृति में आस्था रखते हैं। दोनों अपने का महावीर का अनुयायी मानते हैं।

महावीर का जन्म बिहार के कुण्डग्राम में हुआ था। बिहार में पाई जाने वाली सराक जाति अपने को महावीर का वंशज मानती हैं।

* एडवोकेट, टकसाल गली, दाना ओली, लश्कर - ग्वालियर - 1 (म.प्र.)

मि. रसले कहते हैं कि मानभूमि के श्रावक यद्यपि वे अब हिन्दू हैं अपने प्राचीन काल में जैन होने की बात जानते हैं। मानभूमि और रांची में अब यह वर्णन प्रगट हुआ है कि वे अपने को अग्रवाल थे ऐसा कहते हैं, जो पार्श्वनाथ की भक्ति करते थे और सरयू नदी के तट के देश में रहते थे जो उस प्रान्त में गाजीपुर के पास गंगा में मिलती है। वहाँ वे व्यापार और सराफी का धंधा करते थे। वे कहते हैं कि मानभूमि से पहिले वे मान राजा के राज्य में बसे थे। उनकी जाति की किसी कन्या पर मान राजा ने झगड़ा किया इससे वे सब मिलकर पांचेत में बसे। राँची में ऐसा विश्वास किया जाता है कि पहले वे पुरी के पास उग्र में बसे जहाँ से वे छोटा नागपुर गये। बर्दमान और वीरभूमि में यह बात चलती है कि वे गुजरात से आये। वे अपने आप कहते हैं कि उनके बड़े लोग व्यापारी थे और पार्श्वनाथ की पूजा करते थे, परन्तु अब वीरभूमि, बाकुंडा और मानभूमि में वे अपने को हिन्दू कहते हैं। मानभूमि में उनका काम ब्राह्मण उस समय तक नहीं करते थे जब तक पांच के पूर्व राजा ने उन्हें एक पुजारी दे रखा था। इस पुजारी को राजा ने इस बात के इनाम में दिया था कि जब देश में मरहठों ने हमला किया तब एक श्रावक ने उस राजा को छिपाकर उसकी रक्षा की थी।[3]

मानभूमि में सराकों के 7 गोत्र हैं - आदिदेव, धर्मदेव, ऋषिदेव, सांडील्य, काश्यप, अनन्त और भारद्वाज। वीर भूमि में 'गौतम' और 'व्यास' दो गोत्र तथा रांची में 'वास्तव' और जोड़े जाते हैं। इनके चार थोक या पोट जाति स्थान की अपेक्षा से हैं।

1. पांच कोठिया - मानभूमि के पांचेत राज्य के निवासी
2. नदी पारिया - जो श्रावक मानभूमि में दामोदर नदी के दाहिने तट पर रहते हैं।
3. वीर भूमिय - वीरभूमि के रहने वाले
4. तमारिया - रांची के नातयार के निवासी

इनकी पाँचवीं पोट जाति है जो व्यवसाय के आधार पर हैं जैसे सारकी तांती या तांती सराक जो बांकुरा के विष्णुपुर भाग में रहती है और बुनने का काम करती है और हलकी समझी जाती है। इसके भी चार भाग है - 1. आश्विनी तांती, 2. पात्रा, 3.उत्तर कुली और 4. मंदरानी। संथाल परगनों में जो जातियाँ है उनको - फूल सारकी, सिखरिया, कन्दल और सारकी तांती कहते हैं। इसके अलावा कुछ गोत्रों के नाम पशु रक्षा में अतिशय दया भाव प्रगट करते हैं। इससे इस बात का पता चलता है कि वे शाकाहारी हैं।[4]

मानभूमि जिले में सब जगह जैन मंदिर और मूर्तियाँ हैं। कर्नल डेल्टन ने मानभूमि का दौरा किया था। उससे मालूम हुआ कि मानभूमि में प्राचीन कारीगरी के बहुत चिन्ह अवशेष हैं जो सबसे प्राचीन हैं। वहाँ के लोग कहते हैं कि वास्तव में वे उन लोगों के वंशज हैं जिस जाति के लोगों को सिराक, सरावक कहते हैं जो यहाँ सबसे पहले बसने वाले थे।[5]

सिंहभूमि जिला नागपुर के दक्षिण पूर्व में 1200 ई. के. ताम्र पत्र निकले है जिससे प्रगट है कि मयूरभंज के भोजवंश के राजाओं ने बहुत से ग्राम भेंट किये थे। इस वंश के संस्थापक वीरभद्र थे जो एक करोड़ साधुओं के गुरु थे। ये जैन थे।[6] यहाँ ताँबे की खाने हैं व मकान हैं जिनका काम प्राचीन लोग करते थे। ये लोग श्रावक थे। यह देश श्रावकों का था। .इन्होंने जंगलों में घुसकर ताँबे की खानें खोदी जिसमें अपनी शक्ति और

समय खर्च किया। सिंहभूमि के कई भागों में जैन सम्प्रदाय की काफी बस्ती थी।[7] इनके बनाये ताल, बांघ, पोखरा हैं जिनसे यहाँ के लोग उस समय खेतीबारी करते थे।

उड़ीसा का पुरी जिला - यहाँ के सराक लोगों ने अपनी आजीविका के लिये कपड़ा बुनने का व्यवसाय किया जिससे ये सराकीतांती कहलाये।

संदर्भ -

1. बंगाल, बिहार, उड़ीसा के प्राचीन स्मारक, प्रकाशक श्री दि. जैन युवक समिति, कलकत्ता, पृष्ठ 4 - 5।
2. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, बलभद्र जैन, प्रकाशक पं. केशरीचन्द श्रीचन्द चावलवाले, दिल्ली, वी.नि.सं. 2500, पृ. 360।
3. बंगाल, बिहार, उड़ीसा के प्राचीन स्मारक, पृ. 47 - 48
4. बंगाल, बिहार, उड़ीसा के प्राचीन पृ. 11
5. एसियाटिक सोसायटी बंगाल, सन् 1868, पृ. 35
6. एसियाटिक सोसायटी बंगाल, सन् 1871, पृ. 161 - 69
7. एसियाटिक सोसायटी बंगाल, सन् 1894, पृ. 179

प्राप्त - 8.8.96

श्रवणबेलगोला के राष्ट्रीय प्राकृत संस्थान को पी एच.डी. उपाधि के शोध कार्य हेतु मान्यता प्राप्त

विश्वप्रसिद्ध गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी के पादमूल में 2 दिसम्बर 1993 को महामहिम राष्ट्रपति द्वारा द्वादश वर्षीय महामस्तकाभिषेक के पावन अवसर पर उद्घाटित एवं जगदगुरु कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक महास्वामीजी की अध्यक्षता में संवर्धित राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान को मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर ने शोध संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की है। कर्नाटक सरकार पूर्व में ही मान्यता प्रदान कर चुकी है।

इस संस्थान में पी एच.डी. उपाधि के लिये प्राकृत, संस्कृत, जैन शास्त्र, पालि, हिन्दी, कन्नड़, दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र, पाण्डुलिपि - विज्ञान, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति, स्थापत्य कला, पुरालिपि विज्ञान विषयों में अनुसंधान कार्य की सुविधायें प्राप्त हैं। विविध शास्त्रों के अन्तरंग अनुशासनों पर भी शोध कार्य कराया जा रहा है।

संबंधित विषय में एम.ए. अथवा आचार्य उपाधि में न्यूनतम 55% अंक प्राप्त शोध कार्य के इच्छुक छात्र - छात्रायें अपनी अभिप्रमाणित अंक सूची के साथ इस संस्था से सम्पर्क कर सकते हैं। विस्तृत विवरण हेतु निदेशक से सम्पर्क करें। इस संस्थान के निदेशक प्राच्य विद्याओं तथा जैन दर्शन के अग्रगण्य विद्वान डॉ. भागचन्द्रजी जैन 'भागेन्दु' हैं। चयनित शोधार्थियों को समुचित सुविधायें / शिष्य वृत्ति प्रदान की जायेंगी।

■ **वर्धमान डी. उपाध्ये**

उपनिदेशक - राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान,
श्री धवल तीर्थम्, **श्रवणबेलगोला** - 573135

प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर द्वारा प्रवर्तित

श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कार - 99

सराकोद्धारक संत, परम पूज्य **उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज** की प्रेरणा से स्थापित प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर द्वारा जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान प्रदान करने वाले विशिष्ट विद्वानों को निम्नांकित पाँच श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कारों से सम्मानित करने का निश्चय किया गया है। इन पुरस्कारों के अंतर्गत प्रतिवर्ष पूज्य उपाध्याय श्री के पावन सान्निध्य में आयोजित होने वाले भव्य समारोह में प्रत्येक चयनित विद्वान को रु. 31000=00 की सम्मान निधि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जाता है। पुरस्कार का *संक्षिप्त विवरण निम्नवत्* है।

क्र.	नाम	विषय परिधि
1.	आचार्य शांतिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार	यह पुरस्कार जैन आगम साहित्य के पारंपरिक अध्येता / टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण में उसके योगदान के आधार पर प्रदान किया जायेगा।
2.	आचार्य सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार	यह पुरस्कार प्रवचन-निष्णात एवं जिनवाणी की प्रभावना करने वाले विद्वान को प्रदान किया जायेगा।
3.	आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार	यह पुरस्कार जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले जैन बंधु / बहिन को दिया जायेगा।
4.	आचार्य सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार	यह पुरस्कार जैन विद्याओं के शोध / अनुसंधान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु प्रदान किया जाएगा। चयन का आधार समग्र योगदान होगा।
5.	मुनि वर्द्धमान सागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार	यह पुरस्कार जैन धर्म-दर्शन के किसी क्षेत्र में लिखी गई शोधपूर्ण, मौलिक, अप्रकाशित कृति पर प्रदान किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त सराक क्षेत्र में किए जाने वाले उत्कृष्ट सामाजिक कार्य अथवा सराकोत्थान हेतु जन जागृति उत्पन्न करने के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु एक स्वतंत्र पुरस्कार की स्थापना की गई है। यह पुरस्कार 1999 से प्रारंभ किया जा रहा है। पुरस्कार के अंतर्गत रु. 25000=00 की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाएगा। इस पुरस्कार हेतु सादे कागज पर सराकोत्थान हेतु किये गये समस्त कार्यों का विवरण सप्रमाण भेजना चाहिये।

पुरस्कार हेतु कोई भी विद्वान / सामाजिक कार्यकर्त्ता / संस्था प्रस्ताव निर्धारित प्रस्ताव पत्र पर 31 मई 1999 तक (सभी पुरस्कार हेतु भिन्न-भिन्न प्रस्ताव-पत्र पर) निम्न पते पर प्रेषित कर सकते हैं -

श्रुत संवर्धन पुरस्कार समिति
C/o. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001
फोन : 0731 - 545421 (का.), 787790 (नि.) फैक्स : 787790
Email : kundkund@bom4.vsnl.net.in

प्रस्ताव-पत्र एवं नियमावली उपरोक्त पते से प्राप्त की जा सकती है।

रवीन्द्रकुमार जैन
संयोजक - प्राच्य श्रमण भारती,
12 / 1, प्रेमपुरी, दि. जैन मन्दिर के पास,
मुजफ्फरनगर - 251 002

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

नमिनाथ जैन मंदिर कड़ौद कला

■ नरेश कुमार पाठक *

मध्य प्रदेश के धार जिले की बदनावर तहसील में कड़ौद कला ग्राम स्थित है, यह बदनावर से 25 कि.मी. दूरी पर स्थित कोंद नामक ग्राम से 12 कि.मी. दक्षिण में स्थित है। यह 22° 47′ उत्तरी अक्षांस 75° 13′ पूर्वी देशान्तर में स्थित है। यहां पर नमिनाथ जैन मंदिर, लगभग 19 वीं शती ई. का, श्रीराम मंदिर एवं विष्णु मंदिर तथा अनेक परमार कालीन प्रतिमायें सुरक्षित हैं।

नमिनाथ जैन मंदिर मूलत: 16 वीं शताब्दी का प्रतीत होता है, जिसे लाल बलुआ पत्थर की निर्मित लगभग एक मीटर ऊँची जगतीपर सप्त रथी योजना में निर्मित किया गया है। मंदिर पूर्णत: नागर शैली में निर्मित है, जिसमें मण्डोवर (जंघा) भाग तक के प्रत्येक रथ को कुंभ, कलिका, अन्तर पट्टिका तल छन्द, बंधन वराण्डिका एवं छज्जी जंघा का रूप दिया गया है। यह मंदिर, प्राचीन मंदिरों की भांति अलंकृत तो नहीं है, परन्तु प्रस्तर खण्डों को बहुत ही सुरूचिपूर्ण ढंग से तराशकर संलग्न किया गया है। जिस तरह से प्राचीन मंदिरों में जंघा भाग में ऊर्ध्व वास्तु स्तंभ खण्ड संलग्न किये जाते थे, उसी का अनुकरण किया गया है। जंघा के ऊपर शिखर पर अन्य अंग बने हुये है। मंदिर नागर शैली का है, जो अपने समय का भव्य देवालय रहा है। आधुनिक रंगों की पुताई के कारण इसकी प्राचीनता नष्ट हो गयी है। कुछ समय पूर्व जीर्णोद्धार किया गया है, जिससे गर्भगृह की प्राचीनता का आभास ही नहीं होता है।

गर्भगृह चौकोर है, जिसके देव कक्षासन पर नमिनाथ की आधुनिक प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। वितान घण्टानुमा है। देवालय में गज व्याल का प्रमाण के रूप में प्रयोग किया गया है। तीनों ओर जंघा के मुख्य रथ पर देव कुलिका बनी है, जो प्रतिमा विहीन है। प्रवेश द्वार सादा है, जिसमें तीन शाखाओं में क्रमश: चांवर धारिणी, द्वारपाल एवं पद्म धारिणी अंकित है। प्रवेश द्वार के ललाट बिम्ब पर आधुनिक संगमरमर की योगासन में तीर्थंकर प्रतिमा है। उतरंग तीन स्तंभ शीर्ष पर कलश युक्त है। अन्तराल की दोनों दीवालों में देव कुलिकायें हैं। अन्तराल के स्तंभ शीर्ष पर मारवाही चतुर्हस्ता कीचक संलग्न है। मण्डप स्तंभ विहीन आयताकार है, जिसका वितान गजपृष्ठाकृत है, जिसका मुख मण्डप दो स्तंभों पर आधारित है, इसके स्तंभ मराठी शैली के है, जो क्रमश: नीचे से चौकोर अष्टकोणीय गोल एवं कीर्ति मुख अलंकरण युक्त षोडस कोणीय है। दोनों स्तंभों के मध्य मेहराव लहरियादार एवं राजस्थान की आमेर शैली से प्रभावित है।

मंदिर में एक देवनागरी लिपि का अभिलेख विक्रम संवत् 1998 (ई. सन् 1941) का उपलब्ध है, जिसमें जीर्णोद्धार कराये जाने का उल्लेख है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् 1998 (ई. सन् 1941) में धारा नगरी के राजा आनन्दराव पवार के राज्य में मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया।

प्राप्त - 20.8.98

* संग्रहालयाध्यक्ष, केन्द्रीय संग्रहालय,
ए.बी. रोड, इन्दौर फोन : 700734

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

OMNISCIENCE & JAINISM

■ A. P. Jain *

Every thought is preceeded by material vibrations in brain. These brain waves are not a myth now, but hard facts of experiment. It has been possible to record them on paper and the records are known as incephelograms. They have been transmitted across the Atlantic and received at the other end (a sort of telepathic transmission with the help of machines). In fact they are electro magnetic waves of ultra - ultra short wave lengths. When the brain acting like a miniature radio receiver is properly tuned, the waves from outside are received in. In fact a thought can be looked upon as influx of foreign energy into the soul. Prof. Albert Einsteen astounded the world by his great discovery that energy is matter and matter is energy. Every thought, therefore, which precedes our action, involves comming in of some foreign matter into the soul. The Jain theory of *karma* which postulates the association of subtle matter with the soul at every moment of our life and which has been given the name *karma vargaṇā* and is included amongst the six divisions into which matter has been divided under name *Satdravya.*

Souls are divided into two catagories - mundane and pure. A mundane soul is closely associated with matter which flows in as a result of our thought and consequent actions. As every kind of matter is subject in Newtonian forces of gravitation, the poor mundane soul stands no chances of flying away from the grip of the universe which is filled with matter on its concerns, but when this association with karmic matter is annihilated, the soul begins its upward journey like a hydrogen balloon. Hydrogen atom is the lightest among matters and therefore a hydrogen balloon would go up as far as meets the hydrogen layer of the upper atmosphere provided it is prevented from bursting by the rays of Sun. Soul is lightest still, in fact, because it is non-material and rises to the top of universe beyond which there is no medium of motion.

Pure soul is effulgence divine in which the consciousness inheres although the science of today is trying to search conciousness in the protein molecule.

'There will be a question'- Were the Tirthankaras omniscient? We can only imagine what a divine foresight they must have possesed who laid knowledge before us the mysteries of biggest & smallest measurement of the universe and atom. Electron, Proton, Newtron etc. and astronomical facts like black holes and other things.

Received - 28.3.97

* N-14, Chetakpuri,
Gwalior - 474 009

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

ARE ALL TRIBALS HINDU JAIN

■ A. P. Jain *

Are all the tribals of India Hindu by birth? It is a presumption to this effect that underlies all that is being said and done in a organised manner. If one has to rely on the constitutional laws and modern Hindu Code. The Jains are the pre-Aryan setters in India, they have a large tribal heritage in the different parts of India. No attempt had ever been made by the Jain Society and anthropological survey of India and govt. machinery. It is unfortunate that true census had not been done pre and after independence.

Munda, Ho, Angaria, Sarak, Muria, Mariya, Bhumihar, Bhumij etc. are the Pre Aryan Premitive Jain settlers residing in Jharkhand and Chhota Nagpur. They have faith in Ahimsa (Non-violence) (Mr. I.T. Dalton & H.H. Risley - Bengal and Puri Gazetteer 1908-1910 A.D.).

Jain influence on the tribals existed deeply in almost all parts of ancient India. Most of the Jain Tirthankaras were born and travelled in Northern India. As a result the Jain religion was largely prevalent and mainly propogated throughout the eastern & northern India.

Consequently, the three provinces, Bihar, Bengal & Orrisa were in the way fully drenched in the religious waves of Jainism.

The constitution (1950) includes that non Hindus could never be a scheduled caste, in 1956 Sikhs word has also been included. On the contrary, law on the scheduled tribes, wholly free from religious shackles. Nor is there any judicial decision saying that all scheduled tribes are born Hindu. Any change of religion on the part of a number of a scheduled tribe does not legally alter his or her scheduled tribe status.

The modern Hindu code of 1955-56 does not apply to the scheduled tribes. Had the scheduled tribes been born Hindu, framers of Hindu Code, who extended it also to Buddhists, Jains and Sikhs, could never have agreed to their exclusion from its purview. The Hindu Marriage Act 1955, the Hindu Succession Act 1956, the Hindu Minority and Guardianship Act 1956 and the Hindu Adoption and Maintanance Act 1956, all have an identical declaration to make : 'Nothing contained in this act shall apply to the scheduled tribes'. The rider in this declaration

enabling the central government to extend the code to any of the scheduled tribes is merely cosmatic. In respect to several tribal communities there have been judicial decisions specifically affirming that the four Hindu Laws enactments of 1955-56 do not extend to the scheduled tribes.

The census reports of India do not treat the tribal communities as born Hindu. Appendix 'C' to the census report of 1991 gives details of 'Sects/Beliefs/Religions clubbed with another religion'. According to this annexure, no tribal community has been clubbed with the followers of Hindu religion with report. The main part of the report shows the population, in various states and union territories, under eight different heads — (1) Hindu, (2) Muslim, (3) Christian, (4) Sikhs, (5) Buddhists, (6) Jains, (7) Other religion and persuations and (8) Religion not stated. The head of other religion and persuations is detailed in Appendix 'A' to the report. In this Appendix about 60 tribal religion are seperately specified. The Sarak religion is one out of them.

In addition of these 'specified religions and persuations' of the various tribal communities this appendix also includes a residuary head of 'Tribal Religion' and then an additional head of 'un-classified' religions which also must be inclusive of many smaller tribes.

Indian law thus does not recognise the claim that all tribals are born Hindus. Sarak are born into their own peculiar religious faiths which is Jain.

Article 25 of constitution guaranteeing freedom of conscience does not exclude the tribals from its purview, and like all other Indian they have a right to embrace any other religion of their choice.

Jain religious preachers can thus lawfully offer their religion to the tribals. This can be done peacefully to rejoin the tribals in the main stream of Jaina faith.

All religions claims to be a way of life but there is nothing unique like Jainism, this allow a wide spectrum of religious practices of non violence. Non violence is an original way of life, so it is proved that most of tribals were Jains in pree beginning of social structure.

Received - 28.3.97

* N-14, Chetakpuri,
Gwalior - 474 009

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली

■ आदित्य जैन *

आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन, बद्रीनाथ / इन्दौर द्वारा बद्रीनाथ में भगवान ऋषभदेव की निर्वाणस्थली विकसित की गई है। मुझे अनेक मित्रों ने व्यक्तिगत चर्चाओं एवं पत्रों में बताया कि यह वास्तविक निर्वाण स्थली नहीं है एवं वास्तविक निर्वाण स्थली की उपेक्षा तथा विस्मृत करना ठीक नहीं है। मैंने फाउण्डेशन के पदाधिकारियों से चर्चा की तो उन्होंने भी स्वीकार किया कि हमने बद्रीनाथजी में निर्वाण स्थली का विकास प्रतीक रूप में किया है। वास्तविक निर्वाण स्थली कहाँ है? क्या वहाँ अभी भी कुछ प्राचीन अवशेष या मन्दिर हैं? इस बारे में पदाधिकारियों ने कोई उत्तर नहीं दिया। फलत: मैं सन्दर्भ हेतु अपने पास उपलब्ध मित्रों के पत्रों के अंशों एवं तथ्यों को यहाँ संकलित कर रहा हूँ।

शांतिलाल जैन (शांतिलाल ज्वेलर्स, बम्बई) ने अपने पत्र दि. 21.7.98 में लिखा है कि हमने 1996 में कैलाश मानसरोवर की. यात्रा की थी। अष्टापद पर्वत के नीचे जो मन्दिर है जिसे आजकल बुद्ध मन्दिर में बदल दिया गया है, उस मन्दिर में 1 + 3 देवलियाँ हैं। ये देवलियाँ वैसी ही हैं जैसी हमारे पुराने मन्दिरों में होती थीं। पुराने मन्दिरों में पहले भगवान श्री के पगलिये होते थे, उसे तो लोगों ने मिट्टी से भर दिया है, सो पगलियों का तो पता ही नहीं चलता है, परन्तु ऊपर का आकार देवलियों जैसा ही है। मन्दिर में अन्दर तो सब कुछ बदल चुका है अत: वहाँ तो जैन मन्दिर के प्रमाण नहीं मिलेंगे किन्तु बाहर से स्पष्ट प्रतीत होता है।

श्री भंवरलाल सिंघवी (श्योगंज, सिरोही) लिखते हैं कि – ''कैलाश परिक्रमा में हमारा लास्ट केम्प ताइचेन (Taichen) में लगता है, वहाँ से पैदल कैलाश पर्वत की परिक्रमा होती है और यह परिक्रमा 30 कि.मी. की होती है, बहुत पर्वत होते हैं, उसमें अष्टापद पर्वत भी होता है जिसकी परिक्रमा होती है। वहाँ हमारे गाइड ने अष्टापद पर्वत की बात की व रास्ता बताया और पर्वत की तलहटी पर बौद्ध गेम्पा (मन्दिर) है उसका नाम बताया तो हम परिक्रमा बींच में ही रोक कर अष्टापद के लिये निकल पड़े।

ठीक कैलाश के पास एक पहाड़ पर ताइचेन से 4 घंटे चढ़ाई के बाद एक और पहाड़ दिखता है जिस पर चढ़ना असंभव जैसा है, उस पहाड़ पर 8 सीढ़ी (Steps) हैं और अन्त में शिखर जैसा है। तलेटी पर बौद्ध गोम्पा व एक गुफा है। जैन दर्शन जैसे कोई निशान नहीं मिले, पर अगर इस तरफ अष्टापद रहा हो तो यही होना चाहिये, ऐसा हमारा अनुमान लगता है। 1 नं. फोटो उस जगह से लिया हुआ है, किन्तु जहाँ से कैलाश दिखता है और 3 स्टेप और शिखर दिखते हैं, नजदीक जाने पर कैलाश पीछे रह जाता है और दिखना बन्द हो जाता है।''

बैंगलोर से श्री किशोर जैन लिकते हैं – ''मैं दो वर्ष पहले मानसरोवर की यात्रा पर गया था। जब हम कैलाश के Base Camp पर पहुँचे तो हमारा तिब्बती - चीनी मार्गदर्शक हमारे नामों के पीछे 'जैन' देखकर हमारे पास आया और बोला कि उसके पिता - दादा - परदादा कहते आये हैं कि वहाँ से $3\frac{1}{2}$ घंटे पैदल चढ़ाई के बाद जो पहाड़ है वह 'अष्टापद' है और वहाँ से जैनों के एक भगवान को निर्वाण प्राप्त हुआ है। वहरं पर एक गुफा

है, जिसमें उन्होंने अंतिम तपस्या की और आठ सीढ़ियाँ चढ़कर अलोप हो गये। 150 - 200 वर्ष पूर्व तो वहाँ ऊपर मन्दिर में जैन मूर्तियाँ थीं और तीर्थ यात्री आते थे, पर बाद में वह बौद्ध मन्दिर बन गया और मूर्तियाँ कहीं भारत में ले जाई गई। इस पर हम अष्टापद की यात्रा के लिये अति उत्सुक हो गये और मार्गदर्शन लेकर चढ़ाई शुरु की। चढ़ाई कठिन थी। आक्सीजन की बहुत अल्पता होने से धीरे - धीरे, करीब $4\frac{1}{2}$ घंटे में ऊपर पहुँचे। वहाँ पर गुफा भी दिखी और मन्दिर में जाकर कुछ समय ध्यान भक्ति भी की। मेरे साथ और तीन जैन मित्र थे। मंदिर के पीछे जो पहाड़ है, वह आठ भव्य सीढ़ियों के रूप का ही है। पूरा एक चित्र में नहीं आ सका इसलिये हमने दो चित्र लिये। जिनको मिलाने से आठ सीढ़ियों का अन्दाज लगता है। भगवान आदिनाथ की काया महान थी, ऐसी माना जाता है। भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) को वेदों में नमस्कार किया गया है, ऐसा मैंने भी सुना है। इसलिये लगता है कि यह बात ठीक होगी। हमें एक यात्री और जैन भाई मिला था, जो कह रहा था कि उसे भी गाइड ने यही बात बताई। इसी आधार पर हमें उस गाइड की खोज की और पावन दर्शन हुए। मैंने भारत भर के सभी कल्याणक भूमियों एवं तीर्थों के दर्शन गत 5 - 6 वर्ष अनवरत घूम कर किये हैं। पर लगता यह था कि अष्टापद एक ही बच जायेगा। शायद इसी इच्छा की पूर्ति के लिये यह चमत्कार घटा।

सब बातें और तथ्य इस तरफ इंगित करते हैं कि यही अष्टापद है। पर मैं तो सामान्य व्यक्ति हूँ कोई शोधकर्ता नहीं। सो शोध का विषय तो शोध वाले ही जानें। पर मेरा भक्त मन और तार्किक दिमाग तो यही कहता है कि यही वह भूमि है।'

मैं इन बन्धुओं के सहयोग से प्राप्त 4 चित्रों को भी यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ। इन चित्रों में प्राचीन मन्दिर एवं आसपास का धृश्य दिखाया गया है। किसी भी दिशा से 8 पर्वतचोटियाँ एकसाथ नहीं आती हैं। इसी बीच मुझे 'गोलालारे जैन जाति का इतिहास' पुस्तक मिली। इसके पृष्ठ 126 - 134 पर ब्रह्मचारी लामचीदासजी द्वारा श्री कैलाश क्षेत्र की यात्रा का विवरण प्रकाशित किया गया है। अपरिष्कृत हिन्दी में लिखा यह यात्रा विवरण इस प्रकरण पर व्यापक प्रकाश डालता है एवं इसमें स्वयं द्वारा दर्शन करने का पूर्ण यात्रा विवरण दिया गया है।

सभी पत्र एवं विवरण यह पुष्ट करते हैं कि कैलाश पर्वत में अभी भी मूल निर्वाण भूमि स्थित है, जो वर्तमान बद्रीनाथ में नव स्थापित निर्वाण भूमि से भिन्न है जिसका प्रचार एवं संरक्षण आवश्यक है।

मेरा आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन के पदाधिकारियों से निवेदन है कि वे बद्रीनाथ में नव स्थापित चरणपादुका स्थल पर इस प्राचीन स्थल के बारे में सम्पूर्ण जानकारी एवं यात्रा सुविधायें उपलब्ध करायें जिससे जो उत्साही बन्धु वहाँ जाना चाहें वे जा सकें तथा कम से कम वास्तविक इतिहास लुप्त न हो।

प्राप्त - सितम्बर 98

* **42 / 22, साकेतपल्ली, चिड़ियाघर के पास, लखनऊ** - 226 001

कैलाश पर्वत के चित्र

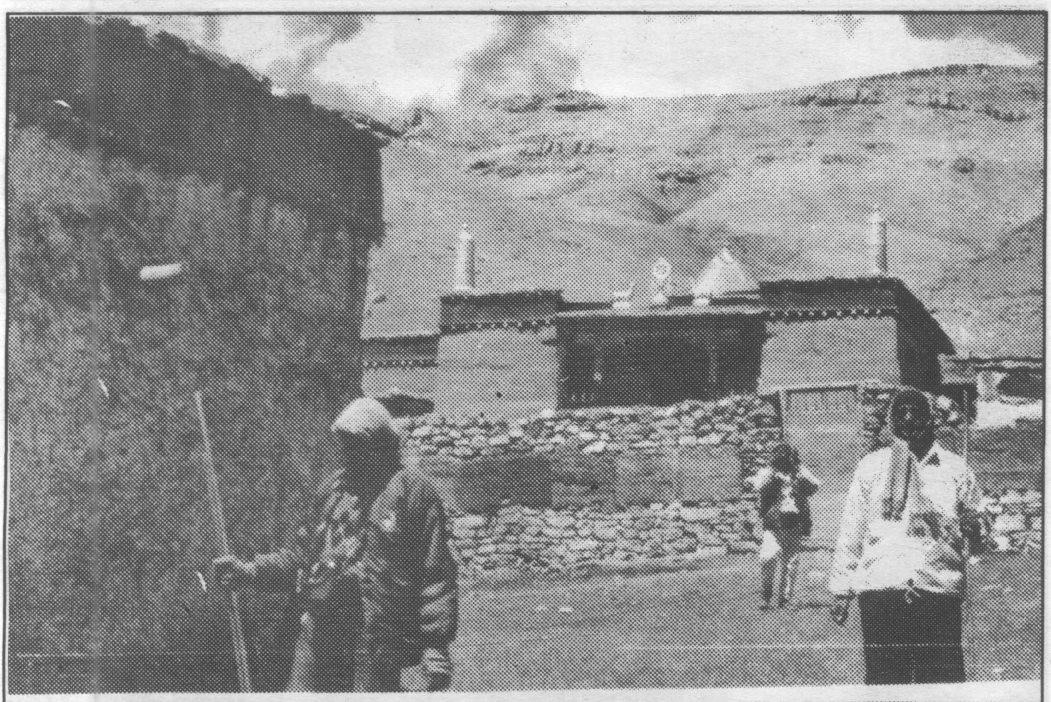

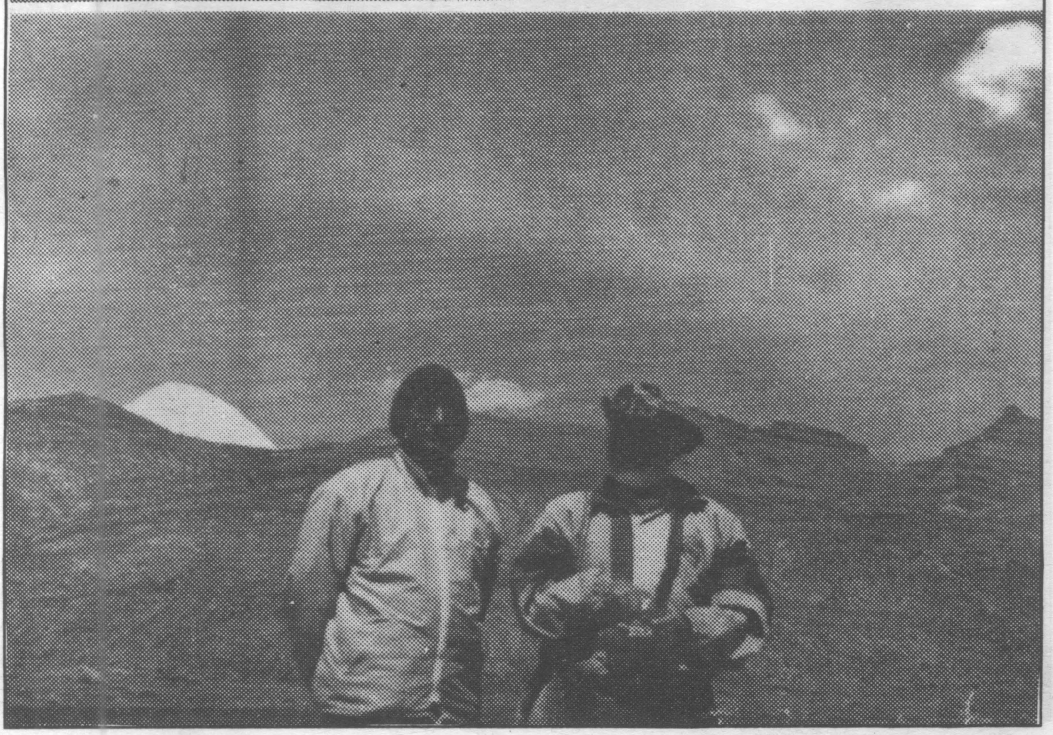

कैलाश पर्वत के चित्र

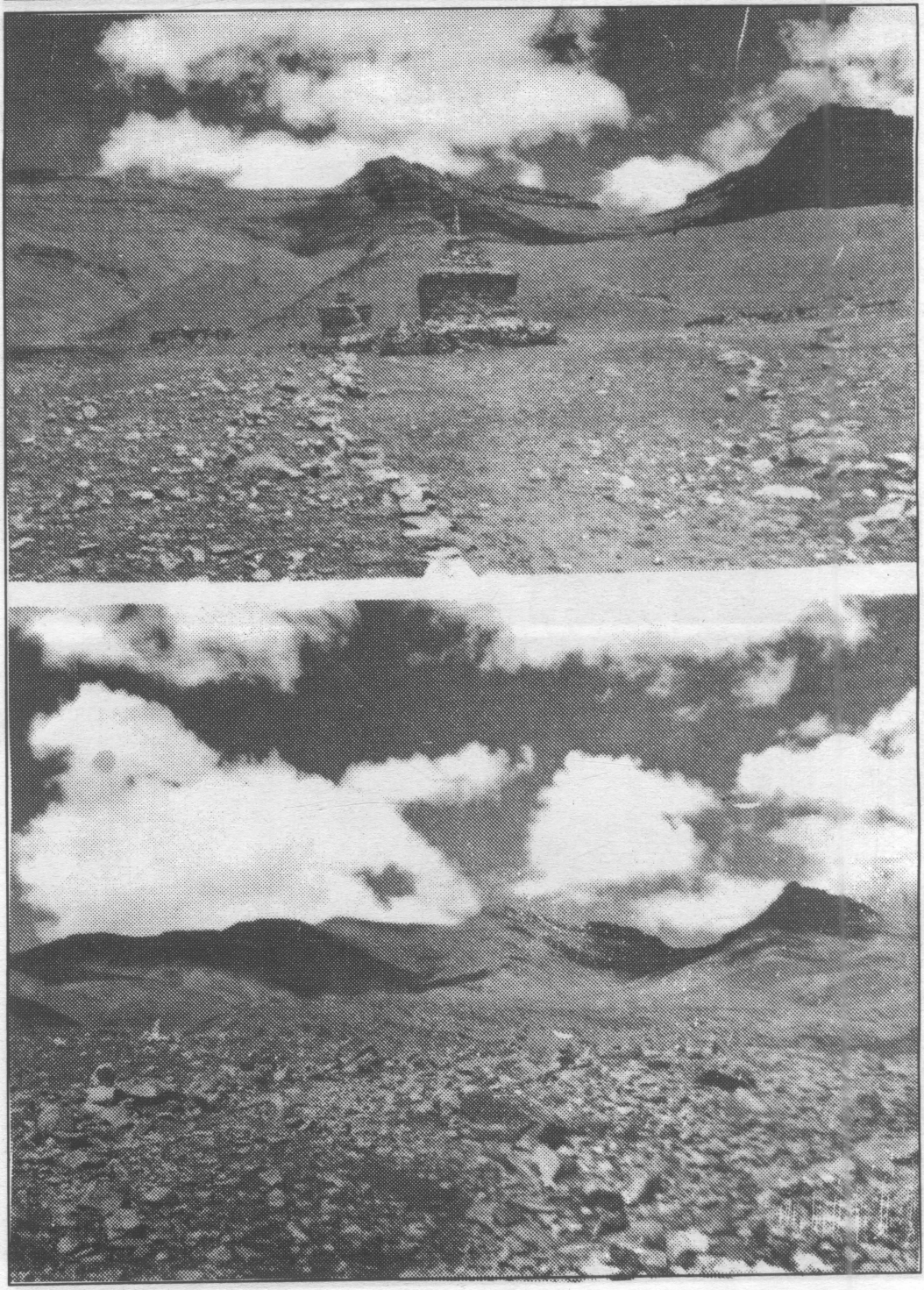

संत काव्य परम्परा का नव्यतम उन्मेष
आचार्य विद्यासागर का काव्य

डॉ. बारेलाल जैन, 'हिन्दी साहित्य की संत परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन', प्रकाशक - श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, कलकत्ता, पृ. 254, मूल्य रु. 45 = 00, समीक्षक - **डॉ. कान्तिकुमार जैन,** सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर (म.प्र.)

उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में आचार्य विद्यासागरजी जैसे तपस्वी की उपस्थिति लगभग अविश्वसनीय प्रतीत होती है। उपभोक्तावादी संस्कृति उन समस्त मूल्यों का क्षरण है जो मनुष्य के उत्कर्ष के लिये त्याग, तपस्या, परोपकार, अहिंसा और करुणादि को महत्वपूर्ण मानते हैं। अंधकार जितना गहन होता है, प्रकाश स्तम्भ की उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है, लगता है आचार्य विद्यासागरजी जैसे संत इतिहास की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति है। आश्चर्य होता है कि वे आत्मोद्धार में संलग्न साधक मात्र नहीं है अपितु बहुतर जन - जीवन और समाज के मंगल के लिए अहर्निश समर्पित अपराजेय योद्धा हैं। योद्धा और युद्ध से हिंसा - वृत्ति का सहज ही मान होता है, किन्तु कोई योद्धा संपूर्ण भाव से अहिंसक हो सकता है और कोई युद्ध, विचारों की शुचिता और व्यक्तित्व की निष्कलंक सात्विकता से भी लड़ा जा सकता है, आचार्य मुनि विद्यासागरजी इसके अद्वितीय दृष्टांत हैं। उनका जीवन अपनी साधना में, उनका व्यक्तित्व अपनी पारदर्शिता में, उनके विचार लोक - मंगल में कैसे समरस है, यह जानना और समझना हो तो उनका सान्निध्य, उनके प्रवचनों का श्रवण और उनके ग्रंथों का अध्ययन हमारे सम्मुख एक ऐसे लोक के द्वार उद्घाटित करता है जो पार्थिव होता हुआ भी नितान्त अपार्थिव है, लौकिक होता हुआ भी शत - प्रतिशत अलौकिक है और सामान्य होता हुआ भी अपने महत्तम अर्थों में पूर्णतः असामान्य है। डा. बारेलाल जैन ने ''हिन्दी साहित्य की काव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन'' शीर्षक पी एच.डी. के अपने शोध - प्रबन्ध द्वारा एक जन हितकारी और उपयोगी कार्य सम्पन्न किया।

सच्ची प्रतिभा की पहिचान का एक निष्कर्ष यह भी है कि वह बहुसीमान्त स्पर्शिनी होती है और किसी एक दायरे में आबद्ध नहीं होती। महाकवि केवल कवि नहीं होता, वह चिन्तक, देशोद्धारक और युगोपकारक भी होता है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री अरविन्दो को आप किस कोटि में रखेंगे? वास्तव में जो युग - पुरुष होता है, युग की समस्याएँ उसके व्यक्तित्व में स्पंदित होती हैं, जो युग दृष्टा होता है, वह युग की समस्याओं के संधान का हरावल होता है, वह सहसा प्रकट नहीं होता, उसके पीछे एक सुदीर्घ परंपरा होती है, वह युग - युगों की साधना का नवनीत होता है। आचार्य श्री विद्यासागर जी जैसे तपस्वी और तत्वज्ञ भारत की उस आर्ष परंपरा के शिखर ज्योति बिन्दु हैं जो सुदीर्घ काल से कभी मंथर भाव से कभी तीव्र वेग से भारत के लोक जीवन में निरन्तर प्रज्वलित रहे हैं।

आचार्य विद्यासागर जी की एक अन्यतम विशेषता यह है कि वे कवि हैं और लोक मंगल उनके काव्य का प्राथमिक और अंतिम उद्देश्य है, वे वर्तमान जगत् के प्रदूषणों

से संघर्ष करने का मार्ग बताते हैं। आश्चर्य है कि वीतरागी, संन्यासी, दिगम्बर होते हुए भी वे समष्टि की खबर रखते हैं और वर्तमान दौर की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से उद्वेलित और व्यग्र हैं। आतंकवाद की विभीषिका से जो संत संतप्त है वह मनुजता के धर्म का पालन करने वाला, विश्व धर्म के प्रांगण में विचरण करने वाला संवेदनशील अलौकिक पुरुष ही हो सकता है। डा. बारेलाल जैन ने स्थान-स्थान पर विद्यासागर जी महाराज के संतत्व के ऐसे अनेक उदाहरण दिये हैं जो उनकी सात्विक दृष्टि, निष्कलुष विचारणा और लोक मंगलकारी चेष्टाओं के अनुपम साक्ष्य हैं। भारत में संतों की सुदीर्घ परंपरा में यह तथ्य निर्विवाद भाव से मान्य है कि 'साबेर ऊपर मानुण ताहार ऊपर नेहीं' चण्डीदास ने जब यह उद्घोषणा की थी तो वे संतों के शाश्वत धर्म का एक सूत्रीय घोषणा पत्र प्रस्तुत कर रहे थे।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज की वाणी में भारतीय आर्ष चिन्तन का श्रेष्ठ स्वर मुखरित होता है। वे कबीर हों, दादू हों, रैदास हों, नानक हो या बाजुल संत हों, ऐसा लगता है कि आचार्य विद्यासागर जी की वाणी की पूर्व अनुगूंज है। इसी बात को हम यों भी कह सकते हैं कि आचार्य विद्यासागर जी की काव्य-वाणी भारतीय परंपरागत संत वाणी का नव्यतम उन्मेष है। इन संतों की विशेषता यह रही है कि वे अनात्मवाद से प्रभावित रहे हैं और एक समतामूलक समाज की स्थापना के लिए कृत संकल्प थे। ये संत मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा करने वालों की अग्रिम पंक्ति में थे। वे न तो शास्त्र से बाधित हुए, न शस्त्र से। निर्भीक भाव से ऊँच-नीच विखण्डित समाज के भेदभाव का परिष्कार करने में मध्यकालीन संतों की जो भूमिका रही है, वह नितान्त महत्वपूर्ण और उपयोगी रही है। आचार्य विद्यासागर जी आज वही कर रहे हैं जो मध्यकालीन संतों ने किया था। उनकी वाणी का महत्व आज इसलिए भी बढ़ जाता है कि मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का जो दर्द लोकतंत्र में हमारा आदि प्रेरक प्रस्थान है, विद्यासागर जी लोकतंत्र की उसी आकांक्षा की पूर्ति में संलग्न है। उनका काव्य न तो रूप-विलास है, न वाणी-विलास। सबकी समझ में आने वाली भाषा में, प्रभावित करने वाली शैली में आचार्य विद्यासागर जो कुछ भी कहते हैं वह एक पारदर्शी और निर्मल मन की अभिव्यक्ति है। परिहास, विदाधता, विनोद उनके स्वभाव का सहज गुण है जो उनकी काव्य शैली में सहज परिलक्षित है। शब्द को तनिक-सा तोड़ मरोड़कर वे अभीप्सित अर्थ की प्रतीति कराने में दक्ष हैं, बोलियों से उनकी संपृक्ति अनुकरणीय है, बहुभाषाविद् होने के कारण उन्हें शब्दों का संघान नहीं करना पड़ता। शब्द उनके पास स्वयं चलकर आते हैं। अनुवाद को भुसभरा गिद्ध नहीं, फुदकती चिड़िया बनाते हैं। फलतः उनका अनुदित काव्य भी मौलिक का सा रस प्रदान करता है। 'मूक माटी' के अध्यवसित महाकवि के रूप में वे जायसी और जयशंकर प्रसाद की कोटि में आते हैं। काव्य को समासोक्ति बनाना, उसमें अनवरत प्रतीकार्य समाविष्ट करना बिरले ही कवियों के लिए संभव होता है। विद्यासागर जी महाराज द्वारा यह विरल कवि कर्म संभव हुआ है। डा. बारेलाल जैन ने अपने सुदीर्घ अध्ययन और अध्यवसाय से एक कृती-विचारक, आचार्य, संत और कवि के जीवन, व्यक्तित्व, विचार और काव्य को अपने शोध का नाभिकीय बनाकर एक प्रशंसनीय कार्य किया है। वास्तव में इस प्रकार के जितने भी शोध कार्य हो, कम ही कहे जायेंगे। डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी विभाग में आचार्य कवि के कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर तीन कार्य सम्पन्न हो चुके हैं। आचार्य विद्यासागर के कृतित्व के इतने आसंग हैं कि उन पर लगन पूर्वक शोधार्थी अपनी शोधोपाधि के लिए प्रतिष्ठा अर्जित कर सकते हैं। जैन शास्त्रों की परंपरागत

शाखा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अनेक कवियों का उल्लेख किया है, उन कवियों के काव्य एवं दर्शन की उपलब्धियों का विद्यासागर जी ने किस प्रकार नवीनीकरण किया है और उन्हें किस प्रकार प्रासंगिक बनाया है, शोध का यह भी एक विषय हो सकता है फिर विद्यासागर जी का अनुवाद कार्य है, उनकी काव्य भाषा का स्वरूप है, उनके काव्य में परंपरा और आधुनिकता की अन्तर्क्रिया है। डा. बारेलाल जैन ने एक दीर्घ फलक पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आचार्य विद्यासागर जी के कृतित्व का आंकलन किया है। वास्तव में उनका यह प्रयास सर्व धर्म समभाव की प्रतिष्ठा की दिशा में एक उल्लेखनीय प्रयास है। जैन धर्म के जो आदर्श हैं, वे ही इस्लाम के हैं, ईसाई धर्म के हैं, बौद्ध धर्म के हैं, हिन्दू धर्म के हैं। वास्तव में सच्चा धार्मिक व्यक्ति किसी एक धर्म का नहीं होता, वह सभी धर्मों का होता है। धर्म की व्यापक व्यवस्था से ही यह संभव हो सकता है। विद्यासागरजी महाराज किसी एक धर्म के नहीं हैं, वे भी धर्मों के हैं, किसी धर्म विशेष के अनुयाईयों का ही उन पर अधिकार नहीं है, सभी धर्मानुरागियों को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरणा मिलती है। डा. जैन ने आचार्य विद्यासागर को एक ऐसे विशाल वृक्ष के रूप में प्रदर्शित, विश्लेषित और विवेचित किया है जिसकी छाया सघन है और जिसकी जड़े बहुत गहरी हैं।

जो आचार्य विद्यासागर जी को जानते हैं, वे इस ग्रन्थ के द्वारा उन्हें अधिक हार्दिकता से जानने में सफल होंगे और जो उन्हें नहीं जानते वे इससे उन्हें जानने को लालायित होंगे। यह ग्रन्थ संत साहित्य के अध्येताओं को एक अभिनव दृष्टि प्रदान करेगा और अपने समय को समझने का एक सार्थक दृष्टिकोण होगा।

डा. बारेलाल जैन ने जितनी लगन से प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का प्रणयन किया है, उतनी ही निष्ठा से निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति ने उसका प्रकाशन भी किया है। 254 पृष्ठों की इस सुरूचिपूर्ण मुद्रित पुस्तक का मूल्य बहुत ही कम है मात्र पैंतालीस रूपये, जन - जन तक पहुंचने की आचार्य प्रवर की आकांक्षा के अनुरूप।

प्राप्त – 1.1.99

अहिंसा इन्टरनेशनल के 1998 के वार्षिक पुरस्कार

1. **अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार (रु. 31,000/-)**
   – डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री, नीमच।
2. **अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन विशेष शाकाहार पुरस्कार (रु. 15,000/-)**
   – डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर।
3. **अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार पुरस्कार (रु. 11,000/-)**
   – श्री सुरेशचन्द जैन, जबलपुर।
4. **अहिंसा इन्टरनेशनल रघुवीरसिंह जैन जीवरक्षा पुरस्कार (रु. 11,000/-)**
   – श्री मोहम्मद शफीक खान, सागर।
5. **अहिंसा इन्टरनेशनल गोल्डन जुबली फाउण्डेशन पत्रकारिता पुरस्कार (रु. 5,100/-)**
   – डॉ. नीलम जैन, सहारनपुर।

सभी विजेताओं को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की हार्दिक बधाइयाँ।

हमारे नवीन प्रकाशन

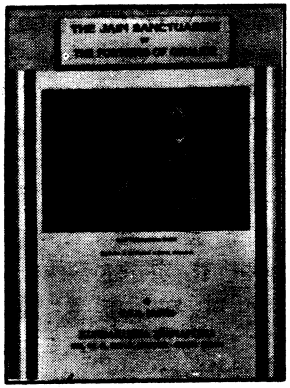

THE JAIN SANCTUARIES OF THE FORTRESS OF GWALIOR

By - **Dr. T.V.G. SASTRI**

Price - Rs. 500.00 (India)
U.S.$ 50.00 (Abroad)

I.S.B.N. 81-86933-12-3

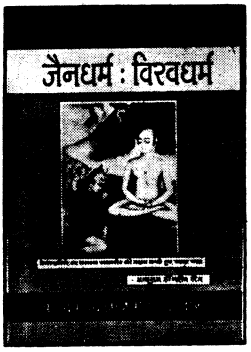

जैनधर्म : विश्वधर्म

- लेखक -

पं. नाथूराम डोंगरीय जैन

मूल्य – रु. 10.00

I.S.B.N. 81-86933-13-1

हमारे अन्य प्रकाशन

	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
* 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-x	200.00
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	3.00
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	4.00
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	3.75
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	3.75
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	3.75
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	3.75
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	5.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	4.00

* अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कर्मबंध का वैज्ञानिक विश्लेषण - समीक्षा

■ रमेशचन्द जैन *

समीक्ष्य लेख अर्हत् वचन 10(3), जुलाई 98 के अंक में पृष्ठ 55-62 पर प्रकाशित हुआ है। लेखक डॉ. जिनेश्वरदासजी जैन-जयपुर हैं। लेख से सम्बन्धित कुछ तथ्य एवं जिज्ञासायें निम्न हैं —

1. आत्मा की तुलना एक बैट्री से की गई है और तैजस शरीर को एक चिप माना है जो कि क्लाक आवृत्ति उत्पन्न करने वाला है। चित्र संख्या 4 में आत्मा पर तैजस शरीर एवं उस पर कार्मण शरीर दिखाया गया है। यह उचित नहीं है। कार्मण शरीर सूक्ष्मतम शरीर है अतएव आत्मा पर कार्मण शरीर के पश्चात तेजस शरीर होना चाहिये। आत्मा एवं दोनों शरीर को हम अपने चक्षुओं से नहीं देख सकते हैं किन्तु विग्रह गति पर ये तीनों दूसरी पारी में स्थानान्तरित हो जाते हैं।

2. समय (काल) एवं पर्यायों के साथ तैजस शरीर में परिवर्तन होता रहता है। अतएव तैजस शरीर को परिवर्तनीय चिप कह सकते हैं।

3. एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों की क्लाक आवृत्ति की संख्या एवं आयाम न्यूनतम से उच्चतम तक बढ़ती रहती है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में केवल्य ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है। केवल्यज्ञान प्राप्त होने पर आत्मा की क्लाक आवृत्ति अल्ट्रा वायलेट, इन्फ्रारेड एवं क्ष-किरणों की आवृत्ति से भी उपर चली जाती है जिसमें प्रत्येक जीव की भूत, भविष्य की सभी पर्यायों को एक साथ जानने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वर्तमान में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में यह क्षमता क्यों नहीं है? क्या यह गुण क्षेत्र विशेष पर निर्भर करता है? आधुनिक संगणकों की उन्नति को देखते हुए यह लगता है कि भविष्य में ऐसे संगणक का निर्माण होगा जिसकी क्लाक आवृत्ति अल्ट्रावायलेट, इन्फ्रारेड या क्ष-किरणों से भी अधिक हो और वह किसी भी जीव की भूत एवं भविष्य की समस्त पर्यायों की जानकारी दे सकेगा।

4. कार्मण वर्गणायें और आत्मा के बीच उर्जा के आदान-प्रदान होने के प्रक्रम को आस्रव कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है - भावास्रव और द्रव्यास्रव। दोनों प्रकार के आस्रवों में मन (छठी इन्द्रिय) की प्रमुख भूमिका रहती है। आगम में भी मन का स्थान प्रथम है। तत्पश्चात वचन एवं शरीर आते हैं। अतएव आस्रव पर मन की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेखक ने द्रव्यास्रव को बिना विवेचन के छोड़ दिया है।

5. कर्म बन्ध भी दो प्रकार का बताया गया है - भावबन्ध और द्रव्यबंध। भावबंध में भी मन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है एवं द्रव्यबंध में वचन एवं काया की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। लेख में द्रव्यबंध पर समुचित विवेचन नहीं किया है।

6. कर्म बन्ध के आबाधा काल एवं उदय काल में प्रति क्षण परिवर्तन होता रहता है। इसके प्रमुख कारण सद्विचार, संयम, त्याग, तप, ध्यान एवं नवग्रह हैं। सूर्य की कक्षा में चक्कर लगाते हुए विभिन्न ग्रहों का प्रभाव संसार के प्रत्येक प्राणी पर पड़ता है। शांति धारा एवं शांति विधान में नवग्रहों की शांति का वर्णन मिलता है। नवग्रह और उनके आराध्य तीर्थंकर इस प्रकार हैं —

ग्रह		आराध्य तीर्थंकर
1.	सूर्य	भगवान पद्मप्रभु
2.	चन्द्रमा	भगवान चन्द्रप्रभु
3.	मंगल	भगवान वासुपूज्य
4.	बुध	भगवान विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथनाथ, अरहनाथ, नमिनाथ एवं वर्द्धमान
5.	गुरु	भगवान आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, शीतलनाथ एवं श्रेयांसनाथ
6.	शुक्र	भगवान पुष्पदंतनाथ
7.	शनि	भगवान मुनिसुव्रतनाथ
8.	राहु	भगवान नेमीनाथ
9.	केतु	भगवान मल्लिनाथ एवं पार्श्वनाथ

अतएव उपरोक्त कारणों से कर्म बन्ध के आबाधा काल, उदयकाल एवं फल देने की शक्ति में परिवर्तन होता रहता है।

7. लेख के अनुसार प्रत्येक कर्म बन्ध निरन्तर 7 कर्मों में (दर्शनावरणी, ज्ञानावरणी, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, नाम, गोत्र) विभाजित होता रहता है, ठीक नहीं है। किसी भी कर्म बन्ध का विभाजन सिर्फ 5 प्रकार के कर्मों में ही हो सकता है। वे हैं दर्शनावरणी, ज्ञानावरणी, मोहनीय, अंतराय एवं वेदनीय। नाम एवं गोत्र कर्म तो वर्तमान पर्याय से जुड़े हैं। विग्रह जाति के अवसर या उससे पूर्व में कर्म बन्ध 8 कर्मों में विभाजित हो सकते हैं ताकि अगली पर्याय, नाम एवं गोत्र का निर्णय हो सके।

8. कार्मण वर्गणायें वातावरण में सघनता से विद्यमान रहती हैं और कर्म बन्ध आत्मा की स्थिति के अनुकूल ही होता है। आत्मा की स्थिति से यहाँ तात्पर्य कर्म बन्ध के सिगनल को आत्मा ग्रहण करती है अथवा नहीं।

9. लेख में होलोग्राम (चित्राभ) भाव बन्ध के कारण होता है किन्तु द्रव्य बन्ध की प्रक्रिया किस प्रकार होगी, कितने काल पश्चात होगी, इसका विवेचन नहीं किया गया है।

अंत में कर्मबन्ध जैसे नीरस विषय को आधुनिक विज्ञान से जोड़ने का लेखक का प्रयास सराहनीय है। आशा है कि भविष्य में भी अर्हत् वचन के माध्यम से इस प्रकार की नवीन शोधों की जानकारी प्राप्त होती रहेगी। लेखक का श्रम प्रशंसनीय है एवं इस विषय के चयन हेतु बधाई।

* सांख्यिकी अध्ययनशाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन - 456010

राष्ट्र की धड़कनों की अभिव्यक्ति
हिन्दी का प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक
नवभारत टाइम्स

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सराक सर्वेक्षण - कतिपय तथ्य

■ ब्र. अतुल *

अर्हत् वचन का जनवरी - 99 अंक पढ़ा। सराक क्षेत्र के बारे में आपने महत्वपूर्ण एवं उपयोगी जानकारी दी है। मैं यहाँ सराक क्षेत्रों के सर्वेक्षण के मध्य संकलित किये गये कतिपय निष्कर्षों को लिपिबद्ध कर रहा हूँ, इससे सराकों के बारे में रुचि रखने वाले बन्धुओं को सुविधा रहेगी।

1. लगभग सभी सराक गाँव सड़क से काफी हटकर अन्दर हैं और रास्ता बालू मिट्टी वाला है। इस पर जाने के लिये टीम के पास जीप व एक्सपर्ट ड्राईवर होने चाहिये।

2. सर्वेक्षण का कार्य अधिक से अधिक दिन छिपने तक पूरा हो जाना चाहिये तथा उसके बाद वहीं गाँव में रुककर आराम करना चाहिये, फिर अगले दिन सुबह उठकर आगे गाँव में जाना चाहिये।

3. सुबह चलने से पहले यह निश्चित कर लेना चाहिये कि हमें आज कहाँ - कहाँ सर्वेक्षण करना है और रास्ता दिखाने एवं उनसे बात करने के लिये दुभाषिये के रूप में किसको साथ रखना है।

4. पं. बंगाल व बिहार के अधिकांश सराक गाँवों में पाठशाला में पाठ्य पुस्तकें बंगला भाषा में होनी चाहिये।

5. पाठशाला के प्रत्येक मास्टर साहब को ट्रेनिंग के बाद ही नियुक्त करना चाहिये और कम से कम तीन माह में एक शिक्षण शिविर ट्रेनिंग के रूप में एक सेन्टर में लगाना चाहिये। किसी एक गाँव में जहाँ कम से कम 10 - 15 गाँव के बच्चे व टीचर आराम से जाकर शिक्षण संबंधी नयी ट्रेनिंग प्राप्त कर सकें, लगाना चाहिये।

6. पाठशाला में जैन शिक्षा के साथ - साथ लौकिक शिक्षा भी अवश्य देनी चाहिये ताकि बच्चे अधिक से अधिक पढ़ाई में रूचि ले सकें।

7. प्रत्येक सराक क्षेत्र में नकद सहायता न देकर आवश्यक सामग्री खरीद कर देना ठीक रहेगा।

8. सराक क्षेत्रों के समुचित विकास के लिये सबसे अधिक आवश्यक है एक ठोस योजना की, यानी कि एक बार में 100 गाँवों में एक साथ कार्य न करके 10 गाँवों को एक साथ रखना चाहिये और उनमें ठोस कार्य करना चाहिये ताकि प्रत्येक सराक भाई - बहिन, बड़ों व बच्चों में अपनी संस्कृति के प्रति जागरूकता बढ़े और ट्रस्ट द्वारा किये गये ठोस विकास कार्यों पर उनका विश्वास बने और उससे वे सन्तुष्ट हो सकें। ऐसा करने से अन्य दूसरे गाँवों के सराक भाइयों में आधी से अधिक चेतना तो अपने आप बिना कार्य किये ही आ जायेगी। इस प्रकार से अपना का जो पवित्र उद्देश्य है उसमें शत - प्रतिशत सफलता मिलेगी।

9. सबसे पहले विकास कार्य करने के लिये उपयुक्त ठोस व संगठित सराक गाँवों को चुनना चाहिये।

10. क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को चाहिये कि वे जिस सराक क्षेत्र में जायें तो वहाँ

से ग्राम कमेटी के प्रत्येक व्यक्ति से मिलें एवं उनकी समस्याओं को ध्यान से सुनें एवं उन्हें सुलझाने के लिये ठोस प्रयत्न करें।

11. सराक क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिये एवं वहाँ पर कार्य करने के लिये महिलाओं की टीम बनाना भी आवश्यक है। ये दो प्रकार से हो सकती हैं। एक तो आल - डण्डिया स्तर पर यानी कि बहुत सी पढ़ी लिखी बोल्ड लेडी जो सेवा कार्य करके अपने खाली समय का सदुपयोग करना चाहती हैं। ऐसी महिलाओं एवं लड़कियों की एक टीम हो जो साल में 15 दिन एवं एक माह सेवा कार्य कर सकें। दूसरे रूप में अपने व आसपास के गाँवों में जाकर के बच्चों को बड़ी लडकियों को एवं महिलाओं को पढ़ायें तो हमारा उद्देश्य बहुत शीघ्र पूरा हो सकता है। ईसाई मिशनरीज भी आदिवासी इलाकों में इसी प्रकार कार्य करती हैं। वर्तमान में हमारी सरकार ने भी प्रौढ़ शिक्षा एवं साक्षरता कार्यक्रम चलाया है जिसमें प्रत्येक गाँव की एक या दो लड़की या महिलाओं की नियुक्ति कार्यकर्ता टीचर के रूप कर देते हैं तथा उसे लगभग 200/- रु. प्रति माह वेतन भी देते हैं, उन कार्यकर्ताओं की मीटिंग ब्लाक स्तर पर प्रत्येक सप्ताह ली जाती है जिसमें वे अपनी प्रगति रिपोर्ट पेश करती हैं तथा पढ़ाई से सम्बन्धित आवश्यक साम्रगी ब्लाक से प्राप्त करती हैं।

12. चूंकि सराक क्षेत्र में अत्यधिक गरीबी है, महिलाओं को तो तन ढकने तक के लिये कपड़ा नहीं हैं, सो यदि अधिक टीम सर्वेक्षण को एक टूर मानकर सराक क्षेत्रों में जायेंगे तो सबको ये पता चल जायेगा कि हमारे सराक भाई कैसी जिन्दगी जी रहे हैं और हमें उनकी तन - मन - धन से निश्चित रूप से सहायता करनी चाहिये।

इस प्रकार से यदि ठोस योजना के साथ सराक क्षेत्रों में सर्वेक्षण करके कार्य किये जायें तो वहाँ निश्चित रूप से एक नयी क्रान्ति आयेगी।

प्राप्त - 7.12.98

* संघस्थ - उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज
सम्प्रति C/o. श्री जे. के. जैन
ओरियन्टल बैंक आफ कामर्स,
सीकर (राजस्थान)

श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी की ओर से अपने संस्थापक पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी की स्मृति में वर्ष 1999 के पुरस्कार के लिये जैनधर्म, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, समाज, संस्कृति, भाषा एवं इतिहास विषयक मौलिक, सृजनात्मक, चिंतन, अनुसंधानात्मक शास्त्री परम्परा युक्त कृति पर पुरस्कारार्थ 4 प्रतियाँ 30 अप्रैल 99 तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में 50001/- रुपे तथा प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। 1996 के बाद की प्रकाशित पुस्तकें इसमें शामिल की जा सकती हैं। नियमावली निम्न पते पर उपलब्ध है -

डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
संयोजक - श्री वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार समिति,
श्री स्वाद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

इन्दौर की देन - महात्मा गांधी लेन

■ रामजीत जैन *

चलो चलें उस मार्ग पर जो भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम पर है। महात्मा गांधी राष्ट्रपिता ही नहीं, राष्ट्र संत, राष्ट्र उन्नायक एवं शांति पथ प्रदर्शक एवं अहिंसा एवं सत्य के पुजारी थे। उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा को गौरवान्वित किया।

इन्दौर नगर ने तदनुरूप ही महात्मा गांधी मार्ग नाम को सार्थक किया और यही नहीं उनके सिद्धान्तों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है और किया जा रहा है। इस मार्ग पर स्थित एक संस्था है दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम जो ज्ञान मार्ग में अनवरत प्रयत्नशील है। उदासीन आश्रम से तात्पर्य उदासीनता नहीं वरन् उदासींनता को दूर कर सद् प्रयत्नता में रहना है और वे सद् प्रयत्न हैं सद् ज्ञान, सद् संस्कृति की वृद्धि।

सद् कार्यों के लिये सद् व्यक्ति अगर मिले तो सोने में सुहागा होता है। इस उदासीन आश्रम ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, सौम्य प्रकृति, सरल स्वभाव, वैभव सम्पन्न एवं समृद्धिता के होते हुए भी सादा जीवन जिनकी परिचर्या हैं। हृदय में करुणा भाव समेटे हुए संलग्न हैं, कार्यरत हैं ज्ञानमार्ग को विकसित करने, प्राप्त स्रोतों का सदुपयोग करने एवं नवीन स्रोतों की तलाश में, और जिनको मार्गदर्शन प्राप्त है पं. नाथूलालजी जैन शास्त्री का जो ज्ञान एवं वय में वयोवृद्ध हैं, परन्तु कार्य में नवयौवन प्राप्त है। इस उदासीन आश्रम के अन्तर्गत शोध संस्थान के रूप में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना हुई है।

कार्य की प्रगति एवं सफलता का मापदण्ड है परीक्षा और परीक्षा बोर्ड के निर्देशक हैं देश के मूर्धन्य विद्वान, संहिता सूरि **पंडित नाथूलालजी जैन शास्त्री।** ज्ञान मार्ग तलाशने एवं विकसित करने के लिये आवश्यकता होती है पुस्तकों की, और इस हेतु एक वृहद सन्दर्भ ग्रंथालय की स्थापना की गई है। ज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं शोध के विषयों में जानकारी देने के लिये वर्तमान युग में पत्रिकाओं का अमूल्य योगदान है। इस दृष्टि से एक शोध पूर्ण पत्रिका 'अर्हत् वचन' प्रकाशित होती है, जिसमें देश-विदेश के विद्वानों के निबन्ध होते हैं और यह पत्रिका देश-विदेश में जाती है। इसका सम्पादन एक योग्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है और वह व्यक्ति है **डॉ. अनुपम जैन।** इस व्यक्ति की योग्यता ने **'अर्हत् वचन'** का ऐसा सुन्दर रूप दिया है जो प्रशंसनीय है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा व्याख्यानमालाओं का आयोजन होता रहता है। अर्हत् वचन के लेखकों को पुरस्कारों द्वारा सम्मानित किया जाता है। विशेष बात यह है कि प्रत्येक कार्य एवं विभाग के लिये सलाहकार मंडल बनाया हुआ है जिसमें विशिष्ट योग्य व्यक्तियों का समावेश है। इसके निदेशक मंडल के अध्यक्ष हैं **प्रो. नवीन सी. जैन।** 18 अक्टूबर 1987 को स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ अपने काल का एक दशक पूर्ण कर चुका है। इस सफलता के मूल में बीज के रूप में हैं **श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल - अध्यक्ष** एवं **डॉ. अनुपम जैन - सचिव।**

हमारी शुभकामना एवं निश्चित भावना है कि इस दस के अंक में एक बिन्दी ये हमारे मूल बीज रूप बढ़ायें। इसी भावना के साथ .....

* एडवोकेट, दाना ओली, टकसाल गली, लश्कर - ग्वालियर

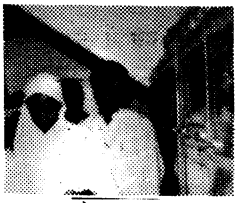

मत - अभिमत

आपकी सम्पादकोचित आन्वीक्षिकी से समृद्ध अर्हत् वचन का जनवरी अंक **'सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक'** के रूप में प्राप्त कर सारस्वत परितोष का बोध हुआ। इस अंक का आलेख पक्ष और जैन जगत् के उत्कर्ष की गति - प्रगति से सन्दर्भित सूचना पक्ष दोनों ही समानान्तर रूप में उपादेय हैं। 'सराक' (श्रावक) जाति के विषय में समग्रता की जानकारी कराने वाली पत्रिकाओं में 'अर्हत् वचन' के इस विशेषांक ने स्वतंत्र मूल्य आयत्त किया है। सराक जाति के ऐतिहासिक और सामाजिक पक्ष के उद्भावन से इस अंक की तद्विषयक शोध - महार्धता शोधकर्ताओं के लिये प्रामाणिक और विश्वसनीय उपजीव्य बन गई है। आपकी सम्पादन दृष्टि की वैज्ञानिकता के प्रति प्रशंसा मुखर...

■ **'विद्यावाचस्पति' डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव**
पी.एन. सिन्हा कालोनी, भिखलापहाडी,
23.2.99 **पटना** - 800 006

जनवरी 99 का अंक प्राप्त हुआ, जिसका काफी समय से इन्तजार था। जैन इतिहास एवं सराक जाति पर आधारित इस चिर - प्रतीक्षित अंक में 'सराक' एवं उससे सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी इस अंक से हासिल हो सकी है। सराक जाति हमारी परम्परा की एक झलक मात्र है। जिन्होंने अत्यन्त कष्ट एवं दुःसह वेदनाओं को सहन करते हुए अपनी परम्परा को सुरक्षित रखा। इसके लिये सराक जाति एवं उसका साहित्य प्रकाश में लाने वाले लेखक एवं सम्पादक महोदय, दोनों ही अभिनन्दनीय हैं। शोधार्थियों के लिये भी यह अंक अत्यन्त उपादेय है।

■ **डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन**
सहायक प्राध्यापक - संस्कृत
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
23.2.99 लश्कर, **ग्वालियर** - 474 009

अर्हत् वचन का वर्ष 11, अंक 1 प्राप्त हुआ जो सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक के रूप में है। वैसे तो अर्हत् वचन ने अपने 10 वर्ष के जीवन में 40 अंक प्रकाशित किये हैं एवं अपने पाठकों को सभी क्षेत्रों के विषयों पर अमूल्य सामग्री प्रदान की है, जिसके लिये कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सभी कार्यकर्ता, विशेषकर आदरणीय काकासाहब (श्री कासलीवालजी साहब) एवं आप अभिनन्दनीय हैं, परन्तु इस सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक प्रकाशित कर अर्हत् वचन ने और भी सराहनीय कार्य किया है जिसके लिये आप एवं आदरणीय काकासाहब बधाई के पात्र हैं। 'सराक जाति' के बारे में अभी तक ऐसी कृति प्रकाशित नहीं हुई है, अतः इसका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार - प्रसार होना चाहिये।

■ **डा. गोपीचन्द पाटनी**
पूर्व विभागाध्यक्ष - गणित
31.3.99 एस.बी. 10, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, बापू नगर, **जयपुर**

'अर्हत् वचन' का **'सराक एवं जैन इतिहास विशेषांक'** देखा। उपाध्याय श्री ज्ञेनसागरजी महाराज का सराकोत्थान के प्रति अप्रतिम योगदान रहा है। इस विषय में उपयुक्त समग्री के प्रकाशन का क्रम बरकरार रखना श्रेयस्कर होगा।

जैनधर्म के बारे में कतिपय पाठ्य पुस्तकों में त्रुटिपूर्ण एवं आधारहीन जानकारियों के प्रकाशन की बात पत्रिका के इस अंक में उठाई, सजगता के लिये धन्यवाद। अस्तु, दुरुस्ती हेतु प्रकाशकों के साथ संवाद ही पर्याप्त नहीं है। ऐसी आपत्तिजनक सामग्री वाले समस्त साहित्य / प्रकाशनों को निरस्त, जप्त किये जाने के अलावा ऐसे लेखकों व प्रकाशकों को 'ब्लैक लिस्ट' किया जाना चाहिये। शासनतंत्र को दायित्व बोध कराने हेतु उच्चतरीय त्वरित कार्यवाही वांछनीय है।

कोमलचन्द जैन (पत्रकार)
सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी,
12.4.99 1 - टी - 35, जवाहरनगर, **जयपुर - 4**

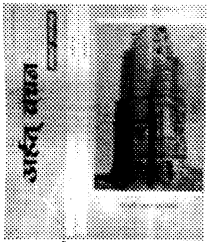

मत – अभिमत

पुस्तकालय एवं गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर जैन विद्या के विकास में निरन्तर गतिशील होने की संभावनाओं को आप निश्चित ही तलाश कर रहे हैं। अपेक्षा एवं आशा है कि संस्थान निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर हो अन्य संस्थाओं को दीप स्तंभ बन सके। यशेष्ट शुभभावनाओं के साथ।

■ **ब्र. राकेश जैन**
उदासीन आश्रम
26.1.99 **कुण्डलपुर** – 470 002

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा संचालित पुस्तकालय एवं संचालित सूचीकरण परियोजना पर आधारित कार्यक्रम अत्यंत प्रशंसनीय लगा। जैन समाज के इतिहास में निश्चित ही ये कार्य मील का पत्थर साबित होंगे। संस्थान के सचिव भाई डा. अनुपम जैन को उनके इस अभिनव प्रयास हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाऐं।

■ **डा. सविता जैन**
66, लक्ष्मीनगर,
10.2.99 **उज्जैन** फोन : 515395

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय जैन शोधार्थी, जिज्ञासु तथा धर्म विज्ञान इतिहास में रूचि रखने वालों के लिए एक विशेष स्थान हो गया है। आज मैंने यह महसूस किया कि यह भारत एवम् विदेशों में स्थित जैन विद्वानों के लिए तीर्थ क्षेत्र का स्थान ग्रहण करते जा रहा है। डॉ. अनुपमजी द्वारा किये जा रहें प्रयास विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

11.2.99 ■ **डॉ. आर. आर. नांदगांवकर**
निदेक - गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर,
1472, न्युनंदनवन लेआऊट
11.2.99 **नागपुर** – 440 009

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ वास्तव में एक ऐसा संस्थान है, जहाँ जैन धर्म पर शोध कार्य हेतु बहुमूल्य अध्ययन सामग्री उपलब्ध है। समाज के विभिन्न वर्गों को यहाँ अध्ययन की सम्पूर्ण सुविधाऐं हैं।

यहाँ का पुस्तकालय अपने अति उत्तम आकार में है जहाँ सम्पूर्ण पठनीय सामग्री बहुत ही अच्छी तरह उपलब्ध एवं संरक्षित है। पुस्तकालय अत्यंत प्रभावित करता है। इस हेतु सभी को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाऐं।

■ **डा. नरेन्द्र जोशी**
सहा. प्राध्यापक - भू - विज्ञान,
11.2.99 होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, **इन्दौर** (म.प्र.)

I have been much impressed by the work of this Institution.

■ **Parichand Ghoshal**
BE - 329, Salf Lake City
26.2.99 **Calcutta** - 700 064

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ जैन धर्म से सम्बद्ध ग्रन्थों, शोधपत्रों और उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण हैं। इस दृष्टि से अध्यात्म, धर्म, दर्शन एवं अन्य विद्याओं के अध्ययन के लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थान है। ग्रंथालय में अद्यतन एवं दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध है, कम्प्यूटर की सुविधा होने से शोधार्थियों के लिये इस संस्थान की उपादेयता स्वंयसिद्ध है। समर्पित पदाधिकारियों द्वारा दी गई सेवाऐं प्रशंसनीय हैं। शुभकामनाओं सहित।

■ **प्रो. प्रहलाद तिवारी**
अध्यक्ष - गणित विभाग
26.2.99 होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, **इन्दौर**

डा. अनुपमजी के साथ लायब्रेरी एवम् उसकी उपयोगिता से संबंधित उपयोगी जानकारी हासिल की। स्वाध्यायी व्यक्ति के लिए यह बहुमूल्य संपदा है।

■ **सुधीर जैन**
स्वस्तिक सिरोमिक्स
14.3.99 27, औद्योगिक क्षेत्र, **कटनी** - 483 501

आज मैंने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की व्यवस्थाओं को देखा और समझा। लगा कि कोई संस्था में अकादमिक पद्धति से कार्य हो रहा है। अभी पुस्तकालय विकास की ओर बढ़ रहा है किन्तु दर्शन विभाग के ग्रंथ बहुत कम हैं, कृपया इनकी सूची बढ़ाकर ग्रंथों का संचय किया जाय।

22.3.99 ■ **ऐलक सिद्धांतसागर**

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय आने का विचार एक लम्बे समय से चल रहा था। आज आने का अवसर प्राप्त हुआ। युवा, उदीयमान, कर्मठ विद्वान डॉ. अनुमपजी ने संस्था का अवलोकन कराया एवं गतिविधियों का परिचय प्राप्तकर प्रसन्नता हुई। आज के समय में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का कार्य गौरवपूर्ण है। सार्थक प्रयास के लिए धन्यवाद।

■ **ब्र. संदीप 'सरल'**
अनेकान्त ज्ञान मंदिर
28.3.99 अनेकान्त नगर, **बीना** (सागर) 470 113

Visited your organisation. It is doing good work. Highly qualified person like Dr. Anupam Jain, if given opportunity to work on **प्रकाशित / अप्रकाशित** *Digambara text, will be a work for future. Mr. Jain should be freed from day-to-day managerial & administrative work by absorving other people, if financial condition allows. Mr. Jain's intellect, if utilised properly, can create a revolutionary work.*

■ **Randhir Ghoshal**
BE - 329, Salt Lake City,
9.4.99 **Calcutta** - 64

आचार्य उमास्वाति (मी) और उनकी रचनायें

भोगीलाल लहेरचंद इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डॉलॉजी, दिल्ली पिछले 14 वर्षों से दिल्ली में प्राचीन भारतीय विद्याओं के क्षेत्र में शोध व प्रकाशन के साथ-साथ 'प्राकृत भाषा एवं साहित्य' और 'जैन धर्म व दर्शन' के विषय में अनेक व्याख्यान्, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा ग्रीष्म व शरत्कालीन अध्ययनशालाओं के आयोजन में पूर्ण सक्रियता से लगा हुआ है। इस संस्थान के द्वारा दिनांक 4, 5, 6 जनवरी 99 को इण्डिया इण्टरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली, में **'आ. उमास्वाति (मी) और उनकी रचनायें'** इस विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गयी।

आ. उमास्वाति (मी) ने संस्कृत भाषा में निबद्ध वैशेषिकसूत्र एवं न्यायसूत्र आदि सूत्र-ग्रंथों की शैली में रचित तत्वार्थसूत्र ग्रन्थ में जैन धर्म, दर्शन, सिद्धांत और आचार के सभी विषयों को 10 अध्यायों में लगभग 350 सूत्रों में निबद्ध किया है। उनका यह तत्वार्थसूत्र जैन समुदाय के सभी सम्प्रदायों में निर्विवाद रूप से एक अत्यन्त श्रद्धास्पद् और प्रामाणिक धर्मग्रन्थ माना जाता है। इस कारण उनके इस ग्रन्थ पर संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ढुँढारी, राजस्थानी तथा अंग्रेजी भाषाओं और बोलियों में 100 से अधिक टीकाएं, भाष्य व अनुवाद उपलब्ध हैं।

भारतीय परम्परा में आ. उमास्वाति (मी) के योगदान को स्पष्ट करने के लिए ही यह अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गयी थी।

संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए प्रख्यात विधिवेत्ता डॉ. एल.एम. सिंघवी ने कहा कि आ. उमास्वाति का तत्वार्थसूत्र सभी धर्मग्रन्थों में एक ग्रन्थराज है। उनका यह ग्रन्थ जैन तत्व ज्ञान, दर्शन, विज्ञान एवं आचार शास्त्र का एक लिखित संविधान है। यह ज्ञान और चारित्र का एक विश्वलेख है। सैद्धांतिक रूप से इसमें सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रयी का विवेचन है। ये तीनों एकत्र मोक्ष के मार्ग का निर्माण करते हैं।

तीन दिनों की इस संगोष्ठी में अमेरिका, फ्राँस तथा जापान के विद्वान प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारतवर्ष के अनेक विद्वान प्रतिनिधियों एवं राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय जैन समाज के विभिन्न वर्गों व संस्थाओं के अनेक गणमान्य महानुभावों और नेताओं ने अत्यंत सक्रियता से भाग लिया। संगोष्ठी में 21 शोधपत्रों का वाचन तथा उन पर गंभीर चर्चा के साथ 4 विशेष व्याख्यान भी हुए।

इस संगोष्ठी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इसके आयोजन व उसकी अभूतपूर्व सफलता में स्वदेश एवं विदेशों के अनेक जैन संगठन व संस्थाओं का अत्यन्त सक्रिय योगदान प्राप्त हुआ। इन सहयोगी संस्थाओं के नाम निम्नलिखित हैं।

1. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली।
2. श्री नाकोडा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट।
3. जैन इण्टरनेशनल, अहमदाबाद।
4. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (उ.प्र.)
5. दि. जैन अकॉडेमिक फाउण्डेशन ऑफ नार्थ अमेरिका, लॅबॅक, टैक्सस।
6. श्री पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
7. जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

डॉ. विमलप्रकाश जैन
निदेशक - बी.एल. इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलोजी, दिल्ली

FIFTEEN DAY AUTUMN SCHOOL

ON

JAIN PHILOSOPHY AND RELIGION

Held at Bhogilal Leherchand Institute of Indology, Delhi

In October 98, The Bhogilal Leherchand Institute has organised a **15 day Autumn School on Jain Philosophy and Religion.** 35 very sincere and senior scholars from all over the country participated in the school as students and 12 eminent scholars delivered lectures. The purpose of holding this school is to unbroken tradition of Jain Philosophy and Religion and its contribution. Programme is uncomparable to any other any where in the country. The participants also expressed their keen desire that the Institute should run this programme every year regularly.

Sahu Ramesh Chandra, Executive Director-Times of India group presiding over the inaugural function of the school on 3rd of Oct. 98 said, the fundamental principles of Indian philosophies and ideologies are basically one, which stand on truth, non-violence and the doctrine of karma. Other scholars and guests present also supported the views of the president, while expressing their ideas.

The Valedictory Function was held on Oct. 17.98. It was presided over by Prof. Vachaspati Upadhyay, Vice Chancellor, Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth. The chief guest was Shri K.P.A. Menon the audience that only a culture, religion and ethicsm that have an attitude of synthesis and respect for traditions and faiths other than its own, can be acceptable. The principles of non-violence, non-absolutism and voluntary limitation of one's needs and belongings will naturally be the most important elements of such a culture.

Thinkers, critics and writers like Prof. Namwar Singh, Prof. Satya Ranjan Banerjee of Calcutta University, Mr. R.V.V. Aiyyar, Secretary : Culture, Govt. of India Mr. S. Raghunathan, Commissioner (Transport), Govt. of Delhi etc., while expressing their views, also made two important suggestions :

1. It was suggested that this Institute should also hold Advanced Schools in the field of Jain Philosophy and Religion.
2. This Institute should organise an all India School on Manuscriptology for preservation and publication of the ancient and incredibly rich literary wealth of this country.

Prof. V.P. Jain
Director-B.L. Institute of Indology

आचार्यश्री देवेन्द्रमुनिजी महाराज का देवलोक गमन

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य **पूज्य श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज** का 26 अप्रैल 99 को प्रात: मुम्बई में देवलोक गमन हो गया। 68 वर्षीय आचार्यश्री को प्रात: अस्थमा का दौरा पड़ा तथा उन्हें तुरंत ही पुनमिया अस्पताल ले जाया गया, जहाँ चिकित्सकों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। आचार्य श्री के देवलोकगमन का दुखद समाचार प्राप्त होते ही जैन समाज में शोक की लहर व्याप्त हो गई। उनके आकस्मिक निधन से श्रमण संघ की महान एवं अपूरणीय क्षति हुई है।

आचार्य श्री घाटकोपर स्थित जैन स्थानक भवन में विराजित थे, आचार्यश्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्य थे। उनका जन्म 7 नवम्बर 1931 को उदयपुर के जैन बरड़िया परिवार में हुआ था। संत समागम और धर्मभावना से प्रेरित होकर बालक धन्नालाल ने मात्र 9 वर्ष की आयु में 1 मार्च 1941 को जैन भगवती दीक्षा ग्रहण की थी। आपने गुरुदेव पुष्कर मुनिजी महाराज के सान्निध्य में जैन आगमों एवं विभिन्न धर्मों के ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। आचार्यश्री प्रबुद्ध विचारक व चिन्तनशील लेखक थे। उन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त था। अपने जीवनकाल में उन्होंने लगभग 400 ग्रंथों का लेखन व संपादन किया। अपने ओजस्वी प्रवचनों के माध्यम से देश में व्याप्त अनैतिकता, भ्रष्टाचार, हिंसा व आंतकवाद के विरूद्ध जनजागरण किया। देश के अधिकांश राज्यों में उन्होंने पैदल विहार कर भगवान महावीर के सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति और भाईचारे का संदेश जन-जन तक पहुँचाया। आपकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर आचार्य श्री आनंदऋषिजी महाराज ने आपको क्रमश: उपाचार्य व श्रमण संघ के आचार्य के पद पर आसीन किया। आपके सान्निध्य में जैन श्रमण संघ में 1200 साधु-साध्वीगण (स्थानकवासी परम्परा के) देश के विभिन्न भागों में विचरण कर रहे हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

श्री शशी भाईजी का निधन

श्री कानजीस्वामी के सहयोगी, आध्यात्म ग्रन्थों के ज्ञाता एवं अध्येता श्री शशी भाईजी का दिनांक 22.3.99 को प्रात:काल 4.15 बजे आत्मसमाधिपूर्वक निधन हो गया।

यह दुखद समाचार प्राप्त होती ही मुम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद, आगरा, मद्रास, अहमदाबाद आदि शहरों से सैकड़ों मुमुक्षुवृंद पहुंच गये। उस वक्त 80 लाख की दानराशि की घोषणा भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये की गई। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार दिवंगत आत्मा की शीघ्र मुक्ति की कामना करता है।

1998 का पू. आचार्य हस्ती अहिंसा कार्यकर्ता अवार्ड

अहिंसा, प्राणी रक्षा व शाकाहार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले निम्न छः महानुभावों को पूज्य श्वे. जैन आचार्य हस्ती अहिंसा कार्यकर्ता अवार्ड मा. श्री अशोकजी गेहलोत (मुख्यमंत्री - राजस्थान सरकार) के करकमलों द्वारा 15 जनवरी 1999 को प्रदान किये गया। इसके अन्तर्गत प्रत्येक पुरस्कृत व्यक्ति को रुपये 21,000/- एवं स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया।

1. **श्री ओमप्रकाशजी गुप्ता**
   अलवर (राज.)
2. **श्रीं पारसचन्द्रजी जैन**
   सवाई माधोपुर (राज.)
3. **श्री प्रवीणकुमारजी जैन,**
   मेरठ - 250 002 (उ.प्र.)
4. **श्री चुन्नीलालजी ललवाणी,**
   जयपुर (राज.)
5. **श्री नरेन्द्रजी दुबे**
   इन्दौर (म.प्र.)
6. **श्री मानेन्द्रजी ओस्तवाल**
   जोधपुर (राज.)

1999 का पू. आचार्य हस्ती अहिंसा कार्यकर्ता अवार्ड

अहिंसा के प्रचार - प्रसार व दिन ब दिन बढ़ रही पशु - पक्षियों की हिंसा की रोकथाम के लिये गतिविधियों के तौर पर आपने आज तक निम्नलिखित रूपों में यदि तन - मन - धन से किसी भी तरह से उत्कृष्ट कार्य किये हों, तो उसकी विस्तृत जानकारी प्रमाण सहित हमें दिनांक 31 अक्टूबर 1999 तक, दो अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों, जो आपको अवार्ड के लिये उचित समझते हों, द्वारा भेजने की कृपा करें।

(1) प्राणी रक्षा, (2) शाकाहार प्रचार, (3) प्रवचन, (4) कत्लखानों का विरोध, (5) हिंसक वस्तुओं का निषेध इत्यादि अहिंसा का कार्य।

इस वर्ष से इस पुरस्कार की राशि को 21000/- के बजाय 31000/- तक कर दी गई है। इसके अन्तर्गत कुल पाँच व्यक्तियों को अवार्ड दिया जायेगा। प्रत्येक को अवार्ड एवं रुपये 31000/- का पुरस्कार भव्य समारोह में दिया जायेगा।

सम्पर्क सूत्र : रतनलाल सी. बाफणा (अध्यक्ष)
'नयनतारा', सुभाष चौक,
जलगांव - 425 001 (महा.)

दिगम्बर जैन महासमिति राष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कार

दिगम्बर जैन महासमिति ने निम्नांकित 5 वर्गों में रु. 25,000/- की राशि के पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की है -

1. हिन्दी साप्ताहिक / पाक्षिक समाचार पत्रों के सम्पादक
2. हिन्दी मासिक पत्र - पत्रिकाओं के सम्पादक
3. उपजातीय संगठनों की पत्रिकाओं के सम्पादक
4. हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के पत्र / पत्रिकाओं के सम्पादक
5. शोध पत्रिकाओं के सम्पादक

केवल दि. जैन समाज / व्यक्तियों द्वारा संचालित पत्र - पकिओं के सम्पादक ही प्रतियोगिता में प्रविष्टि भेज सकते हैं। **अन्तिम तिथि 15.5.99।**

सम्पर्क सूत्र : डॉ. अनुपम जैन
केन्द्रीय प्रचारमंत्री एवं संयोजक - पत्रकारिता पुरस्कार योजना
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, म. गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

प्रकाशित जैन साहित्य का सूचीकरण

गत 100 - 150 वर्षों में विपुल परिमाण में जैन साहित्य प्रकाशित हुआ है। इसके बावजूद भी ग्रंथ भंडारों में सैकड़ों ग्रंथ अप्रकाशित हैं। यह समाज के लिए अत्यंत दुःखद है कि आज बीसवीं सदी के अंतिम वर्ष में भी हम न तो अपने ग्रंथ भंडारों का पूर्णतः सर्वेक्षण करा सके एवं न उनका सूचीकरण। इसी कारण आज हमारे पास पाण्डुलिपि के रूप में सुरक्षित ग्रंथों की सूची भी उपलब्ध नहीं है। जब भी किसी नए भंडार का सूचीकरण होता है, तब यह समस्या आती है कि कितने ग्रंथ अद्यतन अप्रकाशित हैं एवं कितने प्रकाशित। इसका निर्धारण हो जाने पर सीमित मात्रा में अद्यतन अप्रकाशित ग्रंथों का संरक्षण प्राथमिकता के आधार पर किया जा सकता है। शोध एवं अनुसंधान कार्य में लगे विद्वानों के लिए प्रकाशित साहित्य की जानकारी भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसके माध्यम से ही वे पुनरावृत्ति के दोष एवं निरर्थक श्रम से बच पाते हैं। लगभग 50 वर्ष पूर्व प्रकाशित ग्रंथों में भी आज अनेकों अनुपलब्ध हैं एवं नई पीढ़ी को उनके नाम भी ज्ञात नहीं है। किसी भी नए अप्रकाशित ग्रंथ के सम्पादन / प्रकाशन के समय उसकी अन्य पांडुलिपियों की खोज भी नितांत आवश्यक होती है। सम्यक जानकारी के अभाव में बहुत श्रम एवं धन अन्य पांडुलिपियों की खोज में व्यर्थ चला जाता है। शोधार्थियों की सुविधा तथा प्रकाशित / अप्रकाशित साहित्य के संरक्षण की प्रक्रिया के प्रथम चरण में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001 द्वारा बनाई गई है।

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर द्वारा भी इसी प्रकार की असुविधाओं का गत 2 वर्षों से अनुभव किया जा रहा था। उन्होंने इसके समाधान हेतु अनेक संस्थाओं एवं विद्वानों से सम्पर्क किया। संपर्क के क्रम में उन्होंने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से भी पत्राचार द्वारा संपर्क किया एवं ज्ञानपीठ के आमंत्रण पर चर्चा हेतु ट्रस्ट के प्रतिनिधि के रूप में श्री हीरालालजी जैन, नवम्बर 98 में पधारे। इस चर्चा के माध्यम से वर्तमान योजना के प्रारूप को अंतिम रूप दिया गया।

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के संयुक्त तत्वावधान में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा संचालित इस परियोजना का क्रियान्वयन 1 जनवरी 99 से प्रारंभ किया जा चुका है। हमें ज्ञात है कि पूर्व में भी कुछ विद्वानों एवं संस्थाओं ने एतद् विषयक प्रयास किये हैं किन्तु प्रकाशन का कार्य इतनी तीव्र गति से बढ़ा है कि वे प्रयास अब नाकाफी हो गए हैं तथा इस कार्य को बीच में छोड़ देने के कारण परिणाम अधिक उपयोगी न बन सके। हमारी योजना के अनुसार हम इस परियोजना के प्रतिफल इन्टरनेट एवं प्रिन्ट मीडिया द्वारा सर्वसुलभ करायेंगे। मात्र इतना ही नहीं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इस सूची में निरन्तर परिवर्द्धन करता रहेगा एवं जिनवाणी के उपासकों हेतु यह सदैव सुलभ रहेगी। ज्ञानपीठ द्वारा एतदर्थ आधुनिक संगणन केन्द्र (Computer - Centre) की स्थापना की जा चुकी है। हमारा अनुरोध है कि -

1. जिन संस्थाओं ने पूर्व में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण का प्रयास किया है वे अपनी सूचियों की छाया प्रतियां या फ्लापियां उपलब्ध कराने का कष्ट करें। छाया प्रतियां (फोटोकापी) या फ्लापियों का व्यय देय तो रहेगा ही, उनके सहयोग का उल्लेख भी भाव प्रकाशन में किया जाएगा।
2. समस्त ग्रंथ भंडारों / पुस्तकालयों के प्रबंधकों से भी अनुरोध है कि वे अपने संकलनों की परिग्रहण - पंजियों (Accession - Registers) की छाया - प्रतियां भी हमें भिजवाने का कष्ट करें। एतदर्थ शुल्क ज्ञानपीठ द्वारा देय होगा। यदि आवश्यकता हो तो हमारे प्रतिनिधि भी आपकी सेवा में उपस्थित हो सकते हैं।
3. जिन विद्वानों / प्रकाशकों ने जैन साहित्य का लेखन / प्रकाशन किया है, उनसे भी निवेदन है कि वे पूर्ण सूची / लेखक / शीर्षक / प्रकाशक / प्रकाशन स्थल / प्रकाशन वर्ष / संस्करण / मूल्य / प्राप्ति स्रोत आदि सूचनाओं सहित हमें शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें।
4. इस परियोजना के अंतर्गत पांडुलिपियों की सूचियाँ भी संकलित की जायेंगी किन्तु उनका प्रकाशन एवं समग्र सूचीकरण दूसरे चरण में किया जाएगा।

सभी विद्वानों / प्रकाशकों / भंडारों के व्यवस्थापकों / पुस्तकालयाध्यक्षों / संस्थाओं के पदाधिकारियों से इस महत्वाकांक्षी / विस्तृत योजना में सहयोग का विनम्र आग्रह है।

डॉ. अनुपम जैन
सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

(कु.) संध्या जैन
कार्यकारी परियोजनाधिकारी

समवसरण श्रीविहार की बैठक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार को मध्यप्रदेश में सुचारू रूप से सम्पन्न कराने हेतु केन्द्रीय समिति के अध्यक्ष **कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन** एवं महामंत्री **श्री कैलाशचन्द जैन** (करोलबाग, दिल्ली) ने म. प्र. के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ताओं की बैठक दिनांक 14 मार्च 1999 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में आमंत्रित की। इसमें केन्द्रीय समिति के संरक्षक **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल** एवं दि. जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल** विशेष रूप से उपस्थित थे।

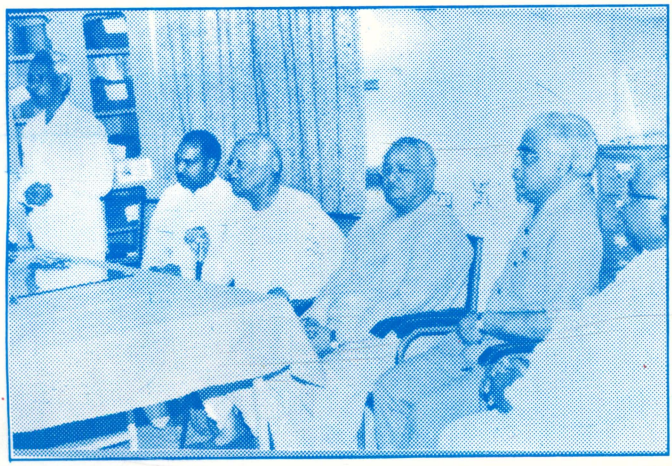

बैठक का चित्र

सभा में दि. जैन समाज - इन्दौर के अध्यक्ष श्री हीरालाल झांझरी, महामंत्री इंजी. जैन श्री कैलाश वेद, दि. जैन महासमिति के राष्ट्रीय महामंत्री श्री माणिकचन्द पाटनी, श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.), पंडित जयसेन जैन (सम्पादक - सन्मति वाणी), श्री रमेश कासलीवाल (सम्पादक - वीर निकलंक), महासमिति पत्रिका के सहसंपादक डॉ. प्रकाशचन्द जैन, अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन की राष्ट्रीय महामंत्री श्रीमती सुमन जैन, दि. जैन महासमिति महिला प्रकोष्ठ की संभागीय अध्यक्षा श्रीमती पुष्पा कासलीवाल आदि ने समवसरण श्रीविहार में अपने पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

सर्वानुमति से शाह बजाज ग्रुप इन्दौर के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं दि. जैन महासमिति मध्यांचल के अध्यक्ष **श्री हुकमचन्द जैन** को म. प्र. प्रान्तीय अध्यक्ष मनोनीत किया गया। प्रान्तीय समिति के संरक्षक पद पर श्री डालचन्द जैन - सागर तथा श्री शांतिलाल दोशी - इन्दौर के मनोनयन का सभी ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। अन्य पदाधिकारियों में महामंत्री श्री प्रकाशचन्द जैन सर्राफ (सनावद), मंत्रीद्वय पंडित जयसेन जैन एवं श्री हसमुख जैन गांधी के नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ. अनुपम जैन
म. प्र. प्रान्तीय संयोजक

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

स्वामित्व श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** यू.जी. 18, सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर द्वारा मुद्रित।

मानद् सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**